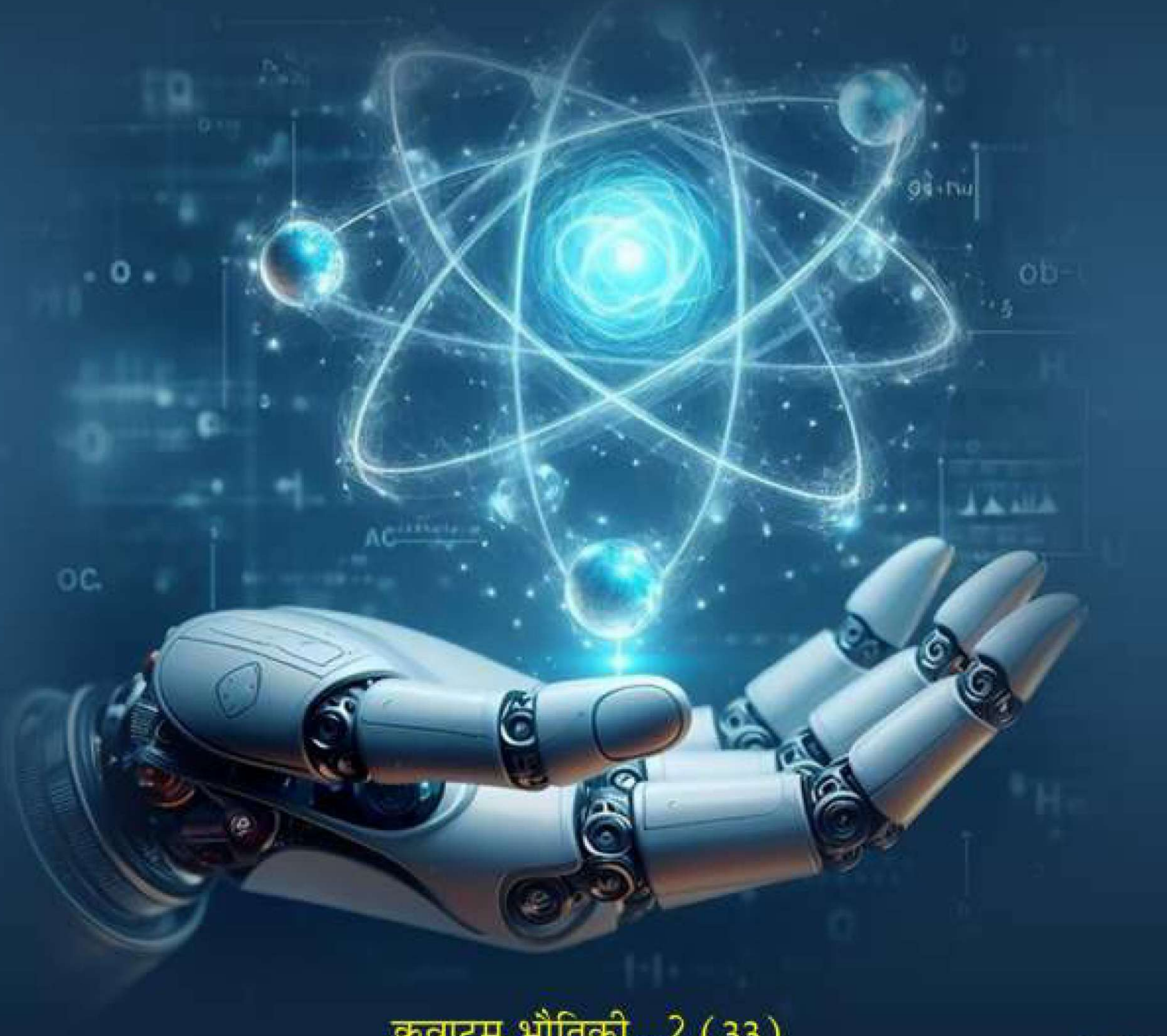
वैज्ञानिक चिंतन की आवाज़

तर्कशील पथ

TARKSHEEL PATH

नवम्बर-दिसंबर 2025

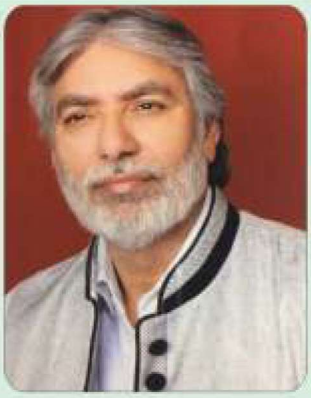


क्वाटम भौतिकी...? (33)

30/-

" क्रांति कोई सेब नहीं है जो पकने पर खुद गिर जाए, उसे गिरना पड़ता है। "....चे ग्वेरा

पूरे इंकलाब की बात करो



जात धर्म के झगड़े छोड़ो
समता ममता की बात करो,
बहुत रह लिए अलग-अलग
मिलने जुलने की बात करो।

हिंसा नफरत के पुजारी वो
तुम अमन चैन की बात करो,
हो गए वो अमीरों के चाकर
तुम मेहनतकशों की बात करो।

लूटा और खसोटा जन को
अब तो जन की बात करो,
बहुत पी लिया खून हमारा
अब हिसाब की बात करो।

हड़पते हैं जो मेहनत को
उनको हडपने की बात करो,
बेनूर सुबह के हामी हैं वो
तुम लाल सुबह की बात करो।

हीरे मोती पर्वत सागर
सारी बहारों की बात करो,
एक खेत नहीं एक देश नहीं
सारी दुनिया की बात करो।

सारे ताने- बाने को बदलो
खुद भी बदलने की बात करो,
हारे थके आधे अधूरे नहीं
पूरे इंकलाब की बात करो।

-मुनेश त्यागी

अल्बर्ट आइंस्टीन के अनमोल विचार

"एक जहाज सबसे अधिक सुरक्षित समुद्र के किनारे पर होता है, परंतु वो इस काम के लिए नहीं बना होता है।" (अर्थात, सुरक्षा के लिए जोखिम न लेना जीवन का उद्देश्य नहीं है।)

"जिंदगी साइकिल चलाने की तरह है। अपना संतुलन बनाए रखने के लिए आपको चलते रहना होता है।"

"हर कोई जीनियस है। लेकिन अगर आप एक मछली को उसकी पेड़ पर चढ़ने की क्षमता से आंकेंगे, तो वह अपनी पूरी जिंदगी यह मानकर जिएगी कि वह मूर्ख और कुछ नहीं कर सकती।"

"हमें सफल व्यक्ति बनने का प्रयास न करके, सिद्धांतों वाला व्यक्ति बनने का प्रयास करना चाहिए।"

"कल्पना ज्ञान से ज्यादा महत्वपूर्ण है।"

"जो छोटी-छोटी बातों में सच को गंभीरता से नहीं लेता, उस पर बड़े मसलों पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता।"

मुख्य संपादक
कुलजीत डैंगर खेड़ा
kuljittarkshil@gmail.com
9781925566

संपादक
गुरमीत अम्बाला
tarksheeleditor@gmail.com
94160 36203

संपादकी मंडल
जसवंत मोहाली (98555-30721)
अजायब जलालाना (94167 24331)
कृष्ण कायत (98961 05643)

विदेशी प्रतिनिद्धि
अवतार बाई, वैनकुवर
+1 672 558-5757
बीरबल भदौड़, कैलगिरी
+ 1 204 894-4371
बलदेव रहिपा, टरांटो
+ 1 41 688 17202
अच्छर सिंह खरलवीर (U.K.)
+ 1 44 748 635 1185
अवतार गोंदारा (U.S.A.)
+ 1 (559) 375-2589

पत्रिका शुल्क :-
वार्षिक : 150/- रु.
विदेश : वार्षिक : 40 यू.एस.डॉलर
रचनाएं, पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के लिए पता:
मुख्य कार्यालय
तर्कशील भवन, संघेडा बाईपास
तर्कशील चौक, बरनाला-148101
01679-241466, 98769 53561
tarkshiloffice@gmail.com
पत्रिका को पढ़ने के लिए लॉग ऑन करें:
www.tarksheel.org
Tarksheel Mobile App :
Readwhere.com

राजिन्दर भदौड़, प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी की तरफ से तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) द्वारा अप्पू आर्ट प्रैस, शाहकोट (जलन्धर) से मुद्रित करके मुख्य कार्यालय तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.), बरनाला, (पंजाब) से तर्कशील सोसायटी पंजाब व हरियाणा के माध्यम से वितरण के लिए जारी किया।

तर्कशील पथ पत्रिका हेतु शुल्क
पंजाब नैशनल बैंक में
तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) के नाम से
खाता सं. 0044000100282234
IFSC: PUNB0004400 में जमा करा सकते है।
एंव पत्रिका भेजने के लिए एड्रेस व शुल्क की स्क्रीन शॉट/रसीद मोबाइल नम्बर +91 98156 70725 पर वट्सएप कर दें।

इस अंक में

आनलाईन पत्रिका को पढ़ने के लिए :

www.tarksheel.org,
http://tarksheelblog.wordpress.com
सर्च करें: tarksheel :
www.archive.org
Readwhere.com

संपादकीय

आज जब हम सूचना प्रौद्योगिकी के युग में जी रहे हैं और विज्ञान ने हमें जीवन की हर सुख-सहूलियत प्रदान की है, तब भी हमारे समाज में अंधविश्वासों की जड़ें गहरी जमी हुई हैं। यह विडंबना ही है कि एक ओर हम तकनीकी प्रगति के शिखर को छू रहे हैं, वहीं दूसरी ओर एक बड़ी आबादी अब भी तर्कहीन और अवैज्ञानिक धारणाओं के अंधेरे में जीवन जी रही है। अंधविश्वास केवल व्यक्तिगत भ्रम नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक कैंसर है जो देश और समाज की प्रगति में बाधक है।

अंधविश्वास, जैसा कि नाम से स्पष्ट है, वह विश्वास है जो 'अंधा' हो, जिसका कोई वैज्ञानिक आधार या तार्किक प्रमाण न हो। यह विश्वास अक्सर भय, असुरक्षा, अज्ञानता या स्वार्थ पर आधारित होता है।

अंधविश्वास के दुष्परिणाम केवल मानसिक और भावनात्मक क्षति तक सीमित नहीं हैं। इसके कारण समाज में कई गंभीर समस्याएं पैदा होती हैं। मानव बलि, किसी जानवर की बलि और हिंसा। सबसे भयावह रूप तब सामने आता है जब अंधविश्वास के नाम पर जादू-टोना, डायन प्रथा या मानव बलि जैसी अमानवीय घटनाएं होती हैं। ऐसे अपराध न केवल कानूनी तौर पर दंडनिय हैं, बल्कि वे समाज के नैतिक पतन को भी दर्शाते हैं।

कई 'बाबा', 'तांत्रिक' और स्वघोषित चमत्कारिक लोग अंधविश्वास का सहारा लेकर भोले-भाले लोगों का आर्थिक शोषण करते हैं। वे डर और लालच का फायदा उठाकर उनसे पैसा ऐंठते हैं, जिससे गरीब और मध्यम वर्ग के लोगों की जीवनभर की कमाई लुट जाती है। गंभीर बीमारियों के इलाज के लिए आधुनिक चिकित्सा को छोड़कर झाड़-फूँक का सहारा लेना कई बार जानलेवा साबित होता है। खासकर ग्रामीण और दूरदराज के इलाकों में, जहाँ स्वास्थ्य सुविधाएँ कम हैं, वहाँ अंधविश्वास मृत्यु दर को बढ़ाने का काम करता है।

अंधविश्वास वैज्ञानिक चेतना के विकास में सबसे बड़ी बाधा है। यह समाज को आलोचनात्मक चिंतन और प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति से दूर करता है, जो किसी भी प्रगतिशील समाज की नींव होती है। विडंबना यह है कि शिक्षित और संपन्न वर्ग के लोग भी इन अंधविश्वासों के चंगुल से पूरी तरह मुक्त नहीं हैं। यह दर्शाता है कि केवल साक्षरता ही काफी नहीं है, बल्कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना अति आवश्यक है। संविधान के अनुच्छेद 51ए (एच) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक का यह मूल कर्तव्य है कि वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद तथा ज्ञानार्जन और सुधार की भावना का विकास करे। लेकिन जमीनी हकीकत इस संवैधानिक जिम्मेदारी से कोसों दूर है।

अंधविश्वास के इस अंधेरे को दूर करने के लिए एक बहुआयामी रणनीति की आवश्यकता है। पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक चेतना और तर्कशीलता पर जोर दिया जाए, ताकि बचपन से ही बच्चों में वैज्ञानिक सोच विकसित हो सके। अंधविश्वास फैलाने वाले और उसका फायदा उठाने वाले पाखंडियों के खिलाफ सख्त कानून लागू किए जाएं और उनका कड़ाई से पालन हो।

मीडिया, सामाजिक संगठन और प्रबुद्ध वर्ग को मिलकर व्यापक जनजागरण अभियान चलाने चाहिए। तर्क और प्रयोगों के माध्यम से लोगों को अंधविश्वास की व्यर्थता समझानी चाहिए। स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी मूलभूत सुविधाओं को दूरदराज के क्षेत्रों तक पहुँचाना होगा, ताकि लोग मजबूरी में पाखंडियों के पास न जाएं।

अंधविश्वास हमारी प्रगति के मार्ग का एक काँटा है जिसे उखाड़ फेंकना हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है। जब तक हम हर बात को तर्क की कसौटी पर परखना नहीं सीखेंगे, तब तक हम अज्ञानता और पाखंड के शिकार होते रहेंगे। हमें याद रखना चाहिए कि एक सभ्य और विकसित राष्ट्र का निर्माण केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण और मानववाद की नींव पर ही किया जा सकता है। यह समय है कि हम अंधविश्वास के पर्दे को हटाकर सत्य के प्रकाश की ओर कदम बढ़ाएँ।

अंधविश्वास का व्यापार और संचार के साधन

-गुरचरण नूरपुर

आज विज्ञान ने हर क्षेत्र में बेमिसाल प्रगति की है और नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं। मनुष्य, जीवों के अत्यंत सूक्ष्म जीन अनुक्रमों को पढ़ने और उनका विश्लेषण करने में सफलता प्राप्त कर रहा है। अंतरिक्ष में बस्तियाँ बसाने के प्रयास किए जा रहे हैं। प्रयोगशाला में कृत्रिम मानव अंगों के निर्माण का कौशल हासिल किया जा रहा है। मनुष्य नैनो तकनीक के माध्यम से एक नई दुनिया में प्रवेश कर रहा है। विज्ञान ने हर क्षेत्र में अपनी उपलब्धियों का परचम लहराया है। जहाँ एक ओर हम वर्तमान समय को विज्ञान का युग, कंप्यूटर और ए आई का युग कहते हैं, वहीं दूसरी ओर हमारी सोचने-समझने की शक्ति को नष्ट करने के लिए हमारे चारों ओर विज्ञान के द्वारा निर्मित संचार साधनों से का गलत प्रयोग करके बड़ी संख्या में अंधविश्वासी और रूढ़िवादी अवधारणाएँ फैलाई जा रही हैं।

आज आलम यह है कि कुछ चालाक व्यापारी लोगों ने गुप्त शक्तियों का पेटेंट कराकर उन्हें बाज़ार में उतार दिया है। जहाँ तथाकथित दैवीय शक्तियाँ, तेल, शैम्पू, साबुन की तरह, चमत्कारी लॉकेट, अंगूठियाँ, कुछ संतों के विभिन्न प्रकार के आशीर्वाद भी बाज़ार में उपलब्ध हैं। कई टीवी चैनल, अखबार अंधविश्वास की सामग्री को लोगों तक पहुँचाने के काम में पूरी तरह व्यस्त हैं, वो हमारे बच्चों के कोमल मन में यह बात बिठाने की कोशिश कर रहे हैं कि अगर कोई उनके साथ बहुत प्यार से पेश आता है, तो उसकी बुरी नज़र आपको बीमार कर सकती है। यह भी कहा जाता है कि इसका एकमात्र उपाय हमारा 'नज़र रक्षा यंत्र' है। सुबह-सुबह एक चैनल पर जटाधारी साधु का वेश धारण किए एक कलाकार गले में एक लॉकेट पहनने की सलाह देता हुआ और उसके फायदे भी बता रहा होता है। उनकी बातों से ऐसा लगता है कि अब विशेष मंत्रों से बना यह लॉकेट हमारे भारतीयों के पास उपलब्ध है।अब हमें किसी बात की चिंता करने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि तीन हज़ार रुपये का यह लॉकेट खरीदकर हम अपने दुखों, बीमारियों और परेशानियों से छुटकारा पा सकते हैं, अपना व्यापार बढ़ा सकते हैं और घर में खुशहाली ला सकते हैं। इतना ही नहीं, घर को दूसरों की बुरी नज़र से बचाने के लिए, हमारी कार या बाइक को दुर्घटनाओं से बचाने के लिए भी एक ऐसा ही 'सुरक्षा कवच' है, जो हमें किसी भी तरह की दुर्घटना से बचाता है। एक कलाकार बड़ी मासूमियत से ईश्वर की शक्ति वाले 'लॉकेट' के फ़ायदों के बारे में बताता है कि कैसे उसका बेटा इस लॉकेट की वजह से दो-तीन बार दुर्घटना से बाल-बाल बचा था। एक और पढ़ा-लिखा आदमी अपनी ख़ुद की कहानी सुनाता है कि कैसे उसे व्यापार में घाटा सहना पड़ा फिर आखिरकार लॉकेट पहनने से उसकी आमदनी अचानक बढ़ने लगी। घर के सारे दुख दूर हो गए। एक ओर अभिनेत्री बताती है कि कैसे वह इस चमत्कारी लॉकेट के कारण एक अदालती मुक़दमा हारते-हारते जीत गई। उसके वकील ने भी हैरान होकर पूछा कि यह चमत्कार कैसे हुआ?

यह सिर्फ़ एक चैनल की बात नहीं है, ऐसे कई चैनल हैं जो लोगों को हर तरह की बीमारियों और परेशानियों से बचाने के लिए रोज़ाना जादुई रत्न, अंगूठियाँ, माला और मोती पहनने का प्रचार करते हैं। इन रत्नों और लॉकेटों के विज्ञापन पर हर दिन लाखों नहीं, करोड़ों रुपये खर्च होते हैं। ये चैनल लोगों की सुविधा के लिए ज्योतिषियों, साधु-संतों, तांत्रिकों, बाबाओं और वास्तु शास्त्रियों को लोगों से मिलवाते हैं। तरह-तरह की परेशानियों से जूझ रहे लोग फ़ोन पर अपनी समस्याएँ बताते हैं और ये ज्योतिषी उनको अपना अंधविश्वासी सौदे बेचतें हैं। जैसे एक लंबी बीमारी से जूझ रहे व्यक्ति ने ऑनलाइन कार्यक्रम में एक स्वयंभू महाराज को फ़ोन करके पूछा कि वह लगातार बीमार रहता है और उसका व्यवसाय भी बंद होने वाला है। इसका कोई उपाय बताइए? तब टीवी पर समस्याओं का समाधान बता रहे एक तांत्रिक महाराज ने कहा कि अगर आप एक नारियल पर सिंदूर लगाकर उसे किसी एक विशेष दिन एक विशेष समय पर बहते पानी में डाल दें, तो भगवान सब ठीक कर देंगे। अब सवाल पैदा होता है कि वो कैसा भगवान है जो एक नारियल को पानी में चढ़ाने के लिए महीनों तक किसी व्यक्ति को बीमार करता है और उसका परिवार उस व्यक्ति के की बीमारी के कारण कितनी परेशानी झेलता है ?

आम भोली-भाली जनता की सोच को विकृत करने के लिए तथा उनको अपनी समस्याओं के कारणों को जानने व समझने की ओर ध्यान देने के बजाय ये चालाक लोग अपनी

अंधविश्वासी धारणाओं का प्रचार कर रहे हैं तथा लोगों की मानसिकता को मध्यकालीन, रूढ़िवादी विचारधारा की ओर ले जा रहे हैं।ये तथाकथित भगवान के एजंट प्रतिदिन लाखों लोगों का मानसिक शोषण करते हैं। भगवान की आड़ में अपनी दुकानें चमकाते हैं। टीवी चैनल मालिक इनके नकली विज्ञापनों से मोटी कमाई करते हैं। इनका शिकार हमेशा दुखी, परेशान और त्रस्त लोग ही होते हैं।

सवाल यह उठता है कि इस समय देश के अधिकांश प्रांत आर्थिक संकट से गुज़र रहे हैं। आम जनता को बेवकूफ़ बनाकर लूटने वाले ये कर्ता-धर्ता इस संकट के समाधान के लिए सरकारों को अपनी बहुमूल्य सेवाएँ क्यों नहीं देते? बल्कि, उन्हें भलाई करनी चाहिए और पूरी विश्व अर्थव्यवस्था को इस संकट से बचाना चाहिए। हमेशा आम आदमी ही इनका शिकार क्यों होता है?

हमारा भारतीय समाज आज भी कई तरह की समस्याओं और परेशानियों से जूझ रहा है। आज हमें अपनी समस्याओं और परेशानियों के कारणों को समझने और उन्हें दूर करने की ज़रूरत है। हमें समाज में पनप रही सामाजिक बुराइयों के ख़िलाफ़ सक्रिय होने की ज़रूरत है। अज्ञानता, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी आदि सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध लोगों में जागरूकता पैदा करने की आवश्यकता है। यह दुःख की बात है कि टीवी चैनल और सोशल मीडिया, जो आज संचार का एक बहुत बड़ा माध्यम हैं, उन पर व्यवसायिक लोगों का कब्ज़ा हो गया है, जो सदैव अपने लाभ के पीछे लगे रहते हैं। इसी लाभ-लोलुप मानसिकता के कारण हमारा समाज बहरा होता जा रहा है। आज हमारे मासूम बच्चों के कोमल मन में अंधविश्वासी और चमत्कारी कहानियाँ भरकर उनकी सोचने-समझने की शक्ति को नष्ट किया जा रहा है। समाज की कठिनाइयों, परेशानियों और समस्याओं के लिए ज़िम्मेदार राजनीतिक कारणों से लोगों का ध्यान हटाने के लिए एक सोची-समझी साजिश के तहत लोगों को यह बताया जा रहा है कि आपके दुख, गरीबी या घटिया प्रशासनिक व्यवस्था के लिए हमारे देश का जर्जर राजनीतिक ढांचा ज़िम्मेदार नहीं है, बल्कि आपकी समस्याओं का कारण आपके भाग्य और ग्रहों की चाल में गड़बड़ी है। इन सभी समस्याओं का समाधान हमारे पास है।हमारे ज्योतिष विशेषज्ञ और ये लॉकेट आपकी सभी समस्याओं का सरल और सहज समाधान हो सकते हैं। ये आपकी जटिल समस्याओं का समाधान कर सकते हैं।

इस प्रकार, घर में गरीबी, दुख और समस्याओं से जूझ रहे लोग अक्सर अपनी अज्ञानता के कारण इनके जाल में फँस जाते हैं। पहले से ही तरह-तरह की समस्याओं से जूझ रहा व्यक्ति, जब इन तथाकथित ईश्वर के दूतों के जाल में फंस जाता है, तो ये उसकी बची-खुची खाल भी उतार लेते हैं। यह एक तरह से पहले से ही पीड़ित व्यक्ति को और भी दुखी कर देता है।

मित्रों, आज हम 21वीं सदी में जी रहे हैं, मनुष्य की बुद्धि ने अनेक चमत्कार किए हैं। हम अपने कमरे में बैठकर पूरी दुनिया की सैर कर सकते हैं। जिन बीमारियों और महामारियों को पहले किसी देवता का प्रकोप माना जाता था, उन्हें मनुष्य ने अपनी बुद्धि से नियंत्रित किया है। हमारे लिए दुखद बात यह है इस विज्ञान के युग में भी हमारा समाज आज भी रूढ़िवादी अंधविश्वासी विचारधारा का शिकार है। आज भी, चालाक लोग अपनी तिजोरियाँ भरने के लिए हमें ज्योतिष, जादुई माला, मंत्र और पत्थर दे कर हमारी सभी समस्याओं का समाधान बताकर धोखा दे रहे हैं। जैसा कि शहीद-ए-आज़म स. भगत सिंह ने कहा था, ''क्रांति की तलवार विचारों की धार से तेज़ होती है।'' समाज में बदलाव लाने के लिए, आम आदमी के जीवन को बेहतर बनाने के लिए, हमें वैचारिक रूप से और अधिक प्रबुद्ध होने की आवश्यकता है। आइए, अपने मन से अंधविश्वास के जालों को हटाने के लिए ज्ञान और विज्ञान के लिए संघर्ष करें।

> डेरे पिछड़ी फिलासफी के केंद्र हैं। यहाँ कुछ चालाक लोग अपने अनुयायियों की भावनाओं से खेलते हैं, झूठे चमत्कार दिखाकर उन्हें भ्रमित करते हैं। हमें ऐसे पाखंडियों से सावधान रहना चाहिए। लोगों को विवेक तर्क और सच्चाई के साथ जोड़ना चाहिए, ताकि समाज अंधविश्वास और धोखे से मुक्त हो सके। तर्कशीलों को डेरों द्वारा फैलाए जा रहे झूठ के खिलाफ खुलकर आवाज़ उठानी चाहिए। फिलासफी के रूप में इनका मुकाबला करना बेहद ज़रूरी है।
>
> **-गुरशरण भाजी**

तनाव - प्रभाव और उपचार

-डॉ. बलवंत सिंह

एक बहुत अच्छी कहावत है कि ''समस्याएं या परिस्थितियां किसी व्यक्ति को परेशान नहीं करतीं, बल्कि उन समस्याओं या परिस्थितियों के प्रति उसका दृष्टिकोण विफल करता है।'' अक्सर कहा जाता है कि तनाव के नकारात्मक प्रभाव होते हैं। आइये इनके बारे में समझें । मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि तनाव व्यक्ति के मन और शरीर दोनों को प्रभावित करता है।

मानसिक तनाव के कारण अवसाद, चिंता, चिड़चिड़ापन, एकाग्रता और याददाश्त में कमी, सेक्स में रुचि में कमी, व्यवहार में उदासीनता, काम में कठिनाई, शराब या अन्य नशीले पदार्थों का सेवन, औद्योगिक और सड़क दुर्घटनाओं का खतरा बढ़ना, बार-बार नकारात्मक विचार या व्यवहार आना आदि हो सकते हैं। इसके अलावा तनाव किसी भी व्यक्ति में गंभीर मानसिक बीमारी का कारण भी बन सकता है या मौजूदा मानसिक बीमारी और भी बदतर हो सकती है या मानसिक बीमारी से ठीक हो चुके व्यक्ति में मानसिक बीमारी के लक्षण फिर से प्रकट हो सकते हैं।



तनाव के कारण शरीर में ऐसे हार्मोन उत्पन्न होते हैं जिनकी उस समय आवश्यकता नहीं होती और शरीर पर अनावश्यक नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जैसे कि अनावश्यक रूप से दिल की तेज़ धड़कन, रक्तचाप में वृद्धि, रक्त शर्करा में वृद्धि, आदि। दीर्घकालिक तनाव कई शारीरिक रोगों के लक्षणों को भी बढ़ाता है, जैसे अस्थमा, यकृत और आंतों के कई रोग, सिरदर्द, रक्तचाप में वृद्धि, कई हृदय रोग, शरीर की प्रतिरक्षा में कमी, आदि।

उपाय : प्रसिद्ध वैज्ञानिक मैरी क्यूरी का कथन '' जीवन में किसी भी चीज से डरना नहीं चाहिए, उसे केवल समझना चाहिए।''

अपनी समस्या को अच्छी तरह से समझें : जब भी जीवन में कोई समस्या आए तो उसे अच्छी तरह से समझें। विद्वानों का कहना है कि किसी भी समस्या का सही वर्णन करने से ही उसका आधा समाधान समझ में आ सकता है। अक्सर हम अपनी समस्याओं को सही परिप्रेक्ष्य से नहीं देखते, या उन्हें नजरअंदाज कर देते हैं, या कई अचेतन कारणों से हम उन्हें समझना नहीं चाहते और उनकी ओर से आंखें मूंद लेते हैं।

सलाह लें या बात करें : जब भी आपको कोई समस्या आए, तो संबंधित व्यक्ति से बात करें। अपने दृष्टिकोण के साथ-साथ दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण को भी समझने का प्रयास करें। यदि इससे भी बात न बने तो किसी जिम्मेदार वयस्क या पेशेवर व्यक्ति से बात करें और समस्या का समाधान करने का प्रयास करें। अपनी समस्याओं को अनावश्यक रूप से लोगों के साथ साझा न करें।

जीवन की गति धीमी कर दो : एक प्रसिद्ध कहावत है, जीवन को चूहा दौड़ मत बनाओ।

इसका मतलब यह है कि चूहा दौड़ की समस्या यह है कि यदि आप दौड़ जीत भी जाते हैं, तो भी आप चूहा ही रहेंगे। इसका मतलब यह है कि आपको लोगों की बातों का अनुसरण नहीं करना चाहिए, बल्कि अपनी क्षमताओं के अनुसार जीवन की गति तय करनी चाहिए। यदि आप अपनी गति और अपनी क्षमता के अनुसार आगे बढ़ेंगे तो कोई समस्या नहीं होगी। यदि कोई कार्य आपकी क्षमता से बाहर है और आपसे उसे करने को कहा जाता है, तो ''नहीं'' कहना सीखें, अन्यथा परेशानी

होगी। एक कहावत है कि बिना सोचे-समझे जल्दी से हाँ कह देना और चाहकर भी ना न कहना, जीवन की अधिकांश परेशानियों की जड़ है। लोग क्या कहंगे, इस पर ज्यादा ध्यान न दें।

- अपनी या अपने बच्चों की तुलना दूसरों से न करें। अनावश्यक रूप से किसी की नकल न करें। नकारात्मक लोगों से दूर रहें।

रिलैक्सेशन : जिंदगी में रिलैक्सेशन करना सीखें। बैठ कर या लेट कर सरल तरीके से आराम करें। आप योग आसन ''शव-आसन'' कर सकते हैं, जिसमें आप शव की तरह पीठ के बल लेट जाते हैं और आराम करते हैं। इसके अलावा आप किसी भी तरीके से आराम कर सकते हैं (बशर्ते तरीका गलत न हो, जैसे कि नशा इत्यादि)।

व्यायाम : व्यायाम भी व्यक्ति को आराम करने में मदद करता है। इससे न केवल शारीरिक स्वास्थ्य बेहतर होता है, बल्कि व्यक्ति मानसिक रूप से भी स्वस्थ रहता है। व्यायाम करने से शरीर में एंडोर्फिन नामक रसायन उत्पन्न होता है जो आपको अच्छा महसूस करने में मदद करता है। अपनी उम्र और स्वास्थ्य के अनुसार व्यायाम करें। शारीरिक व्यायाम के साथ-साथ आप विभिन्न योग व्यायाम, आसन या श्वास तकनीक भी कर सकते हैं।

संतुलित एवं पौष्टिक आहार :- अच्छा भोजन भी हमें शारीरिक और मानसिक दोनों रूप से स्वस्थ रखने में मदद करता है। भोजन में चीनी, नमक और परिष्कृत कार्बोहाइड्रेट की मात्रा न्यूनतम रखनी चाहिए तथा हरी सब्जियों और फाइबर की मात्रा अधिक होनी चाहिए। बहुत अधिक कैफीन और कोला पेय पदार्थ भी घबराहट का कारण बनते हैं।

सामाजिक समर्थन :- मुसीबत के दौरान अपने रिश्तेदारों या दोस्तों से मदद लें। कामकाजी महिलाओं को प्रसव के दौरान या छोटे बच्चों के पालन-पोषण के दौरान सहायता की आवश्यकता होती है। यदि आप किसी रिश्तेदार से मदद नहीं ले सकते तो किसी को वेतन देकर मदद लें। ऐसे समय में पैसा खर्च करने में संकोच न करें।

धन का बुद्धिमानी से उपयोग करें :- यह अक्सर देखा जाता है कि कई लोग वित्तीय कारणों से तनाव से ग्रस्त हैं। इसलिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि धन का उचित उपयोग किया जाए। कई लोग अनावश्यक खर्च करते हैं और बाद में पछताते हैं। कभी भी अनावश्यक ऋण न लें या अनावश्यक खर्च न करें। दुनिया के अमीर और सफल व्यक्ति वॉरेन बफेट ने कहा है कि पहले आवश्यक खर्चों के लिए बचत करें और फिर खर्च करें। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि यदि आपके पास पैसा है तो भी आपको वैध सुविधाओं, स्वास्थ्य या शिक्षा पर कंजूसी करनी चाहिए। कहावत है, ''पैसा बहुत अच्छा सेवक है, लेकिन बहुत बुरा मालिक है।''

कार्य : मनचाहा कार्य करने से भी व्यक्ति को खुशी मिलती है। किसी कार्य को पूरा करने से मिलने वाली संतुष्टि से बहुत खुशी और शांति मिलती है, और तनाव से राहत मिलती है। मनोविज्ञान के जनक डॉ. सिगमंड फ्रायड के अनुसार, काम और प्रेम मानव सुख के लिए आवश्यक हैं। निष्क्रिय रहकर जीवन में खुशी तलाशना व्यर्थ है। परिवार के सभी सदस्यों, विशेषकर बच्चों को काम करने की आदत डालें। अपने परिवार के साथ प्रेम और एकजुटता से रहें: घर का खुशनुमा माहौल तनाव को काफी हद तक कम करने में मदद करता है।

शौक :- कोई रचनात्मक शौक अपनाएं, जैसे चित्रकारी, संगीत (गायन या वादन), साहित्य लेखन, नृत्य सीखना, बागवानी, साहित्य पढ़ना, समाज सेवा करना आदि। अच्छी पुस्तकों का अध्ययन करना बहुत लाभदायक है।

प्रकृति का सम्मान करें : प्रकृति के करीब जाकर उसे समझना और उसका सम्मान करना सीखें।

तत्कालीन समाधान :- यदि कभी किसी भी स्थिति में आप बहुत तनावपूर्ण हो जाते हैं, तो यह तरीका अपनाया जा सकता है: आराम से बैठें और अपनी सांस पर ध्यान दें। फिर अपनी आंखें बंद करें और बहुत धीरे-धीरे लंबी गहरी सांस लें। फिर बहुत धीरे से इसे पूरी तरह बाहर छोड़े। यह एक श्वास चक्र लगभग 10 सेकंड में पूरा किया जाना चाहिए। एक मिनट तक ऐसे ही इस श्वास प्रक्रिया को लगभग 6 बार दोहराएं। आपको तनाव से कुछ राहत अवश्य मिलेगी। लेकिन एक बात हमेशा याद रखें, आधुनिक तेज-रफ़्तार जीवन में जीवित रहने और अच्छा प्रदर्शन करने के लिए कुछ तनाव तो होगा ही। घबराने की बजाय इससे निपटना सीखें। आयकर की तरह, आधुनिक सभ्यता का यह कर भी हम सभी को कुछ न कुछ देना पड़ता है, जो एक प्रकार का तनाव है।

मार्क्स ने धर्म को अफीम क्यों कहा?

-श्याम सुंदर दीप्ति

मार्क्स के संपूर्ण चिंतन और दर्शन को अच्छी तरह से न जानने वाले उनके विरोधी, एक बात खूब उठाते और उछालते हैं कि मार्क्स ने ''धर्म को अफीम कहा''। मार्क्स ईश्वर के अस्तित्व को नकारते हैं और नास्तिकता का प्रचार करते हैं। इस तरह, बहुत बड़ी संख्या में लोग, जो ईश्वर का अस्तित्व न होने के बारे में सोच भी नहीं सकते, वो विरोध में उतर आते हैं। वहीं, मार्क्स को जानने वाले, मार्क्स के अनुयायी, किसी ठोस तर्क या विचार के साथ यह नहीं समझा पाते कि मार्क्स ने धर्म को अफीम क्यों कहा। बल्कि, कभी-कभी वे मार्क्स पर भड़क उठते हैं कि उन्हें ऐसा कहने या लिखने की क्या ज़रूरत थी। उन्हें ऐसी टिप्पणी करने से बचना चाहिए था। खासकर हमारे जैसे देश में, जहाँ ईश्वर और धर्म की शक्ति प्रबल हो चुकी है या यूँ कहें कि उसे निरंतर पोषित किया जा रहा है और उसे कमज़ोर नहीं होने दिया जा रहा है। अधिकतर मौकों पर राजनीति, धर्म के साथ मजबूती से खड़ी होती है और धर्म पर उंगली उठाने वाले की गर्दन काटने से भी नहीं हिचकिचाती।

अपने समय में, मार्क्स ने पूंजीवाद के उदय और उसके साथ घटित हो रही बिगड़ती परिस्थितियों को एक नए दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया और अपना जीवन इसके मूलभूत, बुनियादी कारणों को जानने में लगा दिया, ताकि ऐसी अमानवीय व्यवस्था को बदला जा सके।

पूंजीवाद का उदय विज्ञान के उदय से संभव हुआ और तकनीक के विकास ने इसे गति दी, जब वैज्ञानिक अनुसंधान को मूर्त रूप देने के लिए कारखानों, कार्यशालाओं और मशीनों की आवश्यकता पड़ी। साथ ही, सामंतवाद में पली-बढ़ी दास पीढ़ी को उस प्रतिबंधात्मक व्यवस्था से मुक्ति मिली और उन्होंने राहत की साँस ली कि अब वे अपनी इच्छानुसार, जहाँ चाहें, काम कर सकते हैं। इसी क्रम में, वे कारखानों की ओर मुड़े। उन्होंने एक बेहतर शहरी जीवन का सपना देखा और अनजाने में एक नई तरह की गुलामी और दुख में फँस गए।

पूँजीवादी व्यवस्था में मुनाफ़ा ही मुख्य चीज़ है। मशीनों ने तेज़ी के साथ उत्पादन में बेतहाशा वृद्धि की। मज़दूर को मशीन के साथ खड़ा रहना पड़ता था या थोड़ा-बहुत प्रशिक्षण के साथ, उसे मशीन के साथ कुछ काम करना पड़ता था। ''रफ़तार उत्पादन'' के लिए एक बाज़ार की ज़रूरत थी ताकि लोग उसके बनाए सामान को खरीद सकें। इस ''रफ़तारी उत्पादन'' के पीछे पूँजीपति के मन में ''रफ़तारी पैसा'' इकट्ठा करने की चाहत थी। इस प्रकार, मशीन, मज़दूर और मुनाफ़ा, पूँजीपति के लिए तीन मुख्य धुरे थे।

पूँजीपति के लिए, इस व्यवस्था में, मशीनों का इस्तेमाल करके मज़दूर का जीवन आसान बनाने का कोई उद्देश्य नहीं था। उसकी नज़र मुनाफ़े पर थी। इसलिए, उत्पादन के लिए कच्चा माल सस्ते में मिलना और मज़दूर को न्यूनतम मज़दूरी देना ज़रूरी था। ऐसी लाभ-प्राप्ति की समझ को बनाए रखने और उचित ठहराने के लिए ''ईश्वर और धर्म'' की शक्ति को साथ-साथ रखना आवश्यक था, जो कर्म, पूर्वजन्म, भाग्य आदि का जाल फैलाए रखे।

यद्यपि ईश्वर और धर्म का मनगढ़ंत रूप पूंजीवाद ने खोजा, जो सामंती व्यवस्था में पहले से ही विद्यमान था। विज्ञान ने प्रकृति के अनेक रहस्यों को उजागर किया, जो पूंजीवाद के अनुकूल भी थे और लाभ कमाने में सहायक भी। यही विज्ञान ईश्वर के स्वरूप का पर्दाफास करने में सक्षम था/है, परन्तु पूंजीवाद को यह स्वीकार्य नहीं लगा। अतः जिस विज्ञान ने पूंजीवाद को फलने-फूलने में मदद की, उसने कुछ अनसुलझे प्रश्न सामने रखकर, किसी अदृश्य शक्ति की बात जारी रखकर और कुछ उदाहरण खोजकर विज्ञान को धर्म के विरोध में खड़ा कर दिया। इस प्रकार, लोगों को सांसारिकता का बोध कराया गया। इस प्रकार, लोगों को सांसारिक और आध्यात्मिक जगत में बाँटकर भ्रम की स्थिति बना कर रखी गई।

मार्क्स ने अपने दर्शन में पूँजी की व्याख्या करते हुए, मशीनों द्वारा श्रमिक के शोषण की बात की, श्रमिक की दैनिक मजदूरी और लाभ की पहेली को सुलझाया और धर्म की भूमिका को भी उभारा। उन्होंने न केवल यह कहा कि, ''मनुष्य धर्म का निर्माण करता है, धर्म मनुष्य का नहीं'', बल्कि इसकी पूरी व्याख्या भी की और तर्कों से इसे सिद्ध भी किया। मार्क्स

का योगदान यह है कि उन्होंने सामाजिक दर्शन, मानव मनोविज्ञान को वैज्ञानिक आधार पर कसौटी पे परखने का प्रयास किया और सफल भी रहे।

मार्क्स ने कहा कि यदि लोगों के दुखों की व्याख्या और आलोचना करनी है, तो वास्तविक जगत की आलोचना करनी चाहिए। यह जगत न माया और न ही मिथ्या। यह एक ऐसा सत्य है जिसे स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है। धर्म उसी का प्रभाव है, जो वास्तविकता को एक धर्मनिरपेक्ष युग के रूप में प्रस्तुत करता है। यह वास्तविकता को चकाचौंध का जामा पहनाता है। यह सत्य को भ्रमित और गुमराह करता है।

पूंजीवादी व्यवस्था मानती है कि अगर ईश्वर की शक्ति का पर्दाफास हो गया, तो लोग ईश्वर के भय से मुक्त हो जाएंगे और विज्ञान की मदद से, तर्कशील दृष्टिकोण के साथ, विश्वास और साहस के साथ जीना सीखेंगे। लेकिन पूंजीवाद ने ईश्वर को अपने हिसाब से सजाया है ताकि उसकी शोषण की शक्ति बनी रहे। ऐसा नहीं है कि वैज्ञानिक समझ ने ईश्वर और धर्म की शक्ति को कमजोर नहीं किया है, बल्कि इसने कई लोगों के मन से ईश्वर के अस्तित्व को भी खत्म कर दिया है। एक अनुमान के अनुसार, दुनिया में सबसे ज्यादा आस्था रखने वाले ईसाई हैं, उसके बाद नास्तिक (जो ईश्वर को नहीं मानते) और फिर मुसलमान हैं। लेकिन जो लोग ईश्वर को नहीं मानते, उनके पास ऐसा कोई झंडा या मंच नहीं है जो दुनिया के इन लोगों को एकजुट कर सके। शायद यही इसकी विशेषता है, व्यवहार में खुलापन और मानवता व प्रकृति के प्रति प्रेम, बिना किसी प्रतीक के जरिए कोई पहचान बनाए अपने व्यक्तित्व को कार्यों में अभिव्यक्त करना।इस वैज्ञानिक समझ के विकास के साथ ही, धर्म की भूमिका पर उठे सवालों और अपनी लाभ-लोलुपता की प्रवृत्ति को देखते हुए, पूंजीवाद ने ईश्वर की आवश्यकता को बनाए रखने के लिए कुछ नए तरीकों/रणनीतियों को भी समझा और उनका प्रयोग किया। सबसे पहले, उसने एक महत्वपूर्ण हथियार का इस्तेमाल किया, जीवन में असुरक्षा को बनाए रखना। एक प्रकार की अनिश्चितता कि कल क्या होगा, शाम को भोजन मिलेगा या नहीं? इसके साथ ही, पूंजीवाद की दूसरी विशेषता, लाभ, ने जहाँ एक ओर उसके लिए धन का भंडार बनाया, वहीं दूसरी ओर मजदूर को दो वक्त की रोटी के लिए तरसा दिया। असमानता का वातावरण निर्मित किया, ऐसे वातावरण में व्यक्ति स्वतः ही असुरक्षित महसूस करता है। एक जीता-जागता, धड़कता, सोचता हुआ व्यक्ति यह अवश्य सोचेगा कि इतनी मेहनत, दिन-रात के बाद भी, हालात एक जैसे क्यों हैं? यह बोध उसे फिर किसी दैवीय शक्ति में विश्वास करने के लिए गुमराह करेगा। यह उसे भाग्य के बारे में सोचने पर भी प्रेरित करेगा।

इस प्रकार, यह व्यवस्था व्यक्ति की स्वयं पर विश्वास करने की क्षमता को कमज़ोर करती है, आत्मविश्वास को कमज़ोर करती है। कभी-कभी लोग दृढ़ निश्चय के साथ चलने की कोशिश भी करते हैं, और जब यह विश्वास बार-बार उन्हें तोड़ता है, तो उन्हें लगता है कि ''सच्च में ही किस्मत खराब है''।

मार्क्स इस स्थिति की व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि धर्म उस व्यक्ति की आत्म-चेतना और आत्म-सम्मान है जिसे खुद पर भरोसा नहीं है, जो खुद पर काबू नहीं पा सका है, जिसे पालन-पोषण के दौरान यह नहीं सिखाया गया या जिसने अपना सब कुछ खो दिया, कड़ी मेहनत की, आगे बढ़ा, और फिर हार गया । इस प्रकार, मार्क्स इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धर्म से मुक्ति स्वयं पर काबू पाने में निहित है। यानी खुद को मजबूत और आत्मविश्वासी बनाना और फिर हर बाधा को पार करना।पूंजीवाद की अवधारणा के अनुसार, मुनाफ़े के आगे मज़दूरी तय करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता था कि इतनी दैनिक मज़दूरी तय की जाए कि महीने के केवल पच्चीस दिन ही कटें। आखिरी पाँच-सात दिन लोगों को भीख माँगकर, उधार लेकर, इधर-उधर से गुज़ारा करना पड़े। बच्चों की पढ़ाई के लिए या बीमारी की हालत में घर के बर्तन बेचने या कर्ज़ लेने की नौबत आ जाए। यह सब इस हद तक बढ़ जाए और रोज़मर्रा की ज़िंदगी का हिस्सा बन जाए कि ज़िंदगी से ईश्वर का ख्याल ही न छूटे। इंसान पत्थर से सिर मारकर अपना सिर फोड़ ले, रो-रोकर शांत हो जाए।

आम लोगों, मज़दूरों की मेहनत को ईश्वर की दया से जोड़ा गया। ''तुम्हारी मेहनत, उसकी दया'', यानी तुम जितना चाहो काम कर लो, जब तक उसकी दया, उसकी मेहरबानी न हो, उसके दरबार में तुम्हारी दुआ कबूल न हो जाए, तुम्हें बचाने वाला कोई नहीं। ''घर में देर है, अंधेर नहीं है'' जैसे दर्शन

बनाए गए। ऐसी बातें तब सच्च लगती थीं जब हम अपने आस-पास देखते थे कि किसी की पदोन्नति हो रही है, किसी के बच्चे को अच्छे कोर्स में दाखिला मिल रहा है, नौकरी मिल रही है और दूसरी तरफ़, बिलकुल उलटा। असुरक्षा और अनिश्चितता का वही भाव लगातार बने रहना।

इसके साथ ही, असमानता का माहौल भी। यह सिर्फ़ धन/पूँजी की बर्बरता तक सीमित नहीं, धर्म-जाति, क्षेत्र और भाषा के नाम पर, जहाँ भी संभव हो, सांप्रदायिक सद्भाव बनाए रखने के प्रयासों पर भी प्रहार हुआ। व्यक्ति की क्षमताओं पर गर्व करने के बजाय, जाति-समुदाय की पवित्रता और उत्कृष्टता पर गर्व करने को उभारा गया। ''गर्व से कहो हम ... हाँ, गर्व से कहो हम......'', खान-पान और पहनावे के भेदों में नफ़रत भरा गया। पूँजीपति को एकता से परहेज़ ही नहीं, बल्कि डर भी लगता है।

अगर किसी समस्या का इलाज करना हो तो उस समस्या का कारण ही सही रास्ता दिखा सकता है। जब हर समस्या, जीवन के दुखों का कारण, नियति, सरल तरीके से बता दी जाएगी, तो व्यक्ति किसी मंदिर, किसी मस्जिद, किसी पंडित, किसी पुजारी, किसी मुल्ला के पास भेजा जाएगा। भाग्य लिखने वाले तथाकथित ईश्वर और पंडित मुल्ला न्याय दिलाने और दुआ कबूल करवाने के लिए वकील बन कर पेश होतें हैं। इस प्रकार, पूँजीवाद सुंदर धार्मिक स्थान बनाकर, सोना-चाँदी चढ़ाकर, लंगर चलाकर और धर्म की शक्ति को अपार धन दान देकर अनेक संस्थाओं को जीवित रखने में अग्रणी भूमिका निभाता है।

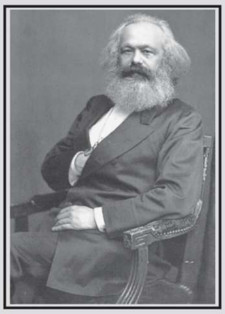
अतः, धर्म के विरुद्ध संघर्ष अप्रत्यक्ष रूप से उस दुनिया के विरुद्ध संघर्ष है जिसमें से धर्म का उदय हुआ है। धर्म मनुष्य से कहता है कि वह वास्तविक व्यावहारिक जीवन के कष्टों को अस्थायी रूप से भूल जाए, झाँझ-मँजीरे बजाए, आँखें बंद करके कीर्तन का आनंद ले। इसीलिए मार्क्स धर्म को अफीम कहते हैं। वह नशा, जो दीन-हीन दुनिया को उसके कष्टों से दूर कर देता है।

मार्कस अपने वास्तविक मुद्दे, श्रम की बदतर स्थिति से बाहर निकालने के प्रयास में, मज़दूर को खाली हाथों की लाचारी से बाहर निकालते हैं। वह मज़दूर को उसके ''चमत्कारी'' हाथों के विश्वास से साथ जोड़ते हैं और इस संदर्भ में धर्म और ईश्वर का पर्दाफास करते हैं। मार्क्स ने अपनी व्याख्या में कहा था, धर्म के विरुद्ध बोलना, धर्म के उन्मूलन की बात करना, इस अफीम की लत से मुक्त होना, लोगों को वास्तविक सुख से जोड़ता है। धर्म से मुक्ति, उस भ्रम से मुक्ति की माँग है जो व्यक्ति वास्तविक-व्यावहारिक जीवन में जीना चाहता है। यह माँग है कि वह एक सच्चे नायक की तरह जिए, जो असहाय , बेबसी में अपने दिन बिता रहा है। जो स्वर्ग के भ्रम में अपना दयनीय जीवन को भाग्य मानकर जी रहा है।

98158-08506

जीवन का उद्देश्य

-कार्ल मार्क्स



कठिनाइयों से मुक्त जीवन
मेरे लिए नहीं,
नहीं, मेरे तूफानी मन को
यह मंजूर नहीं।

मैं तो चाहता हूँ,
एक महान और उदात्त उद्देश्य
और उसके लिए, जीवन भर संघर्षों की एक अटूट श्रृंखला
हे कला! तू खोल,
मानवता की विरासत,
अपने अमूल्य खज़ानों के द्वार,
मेरे लिए खोल!
अपनी बुद्धि और भावनाओं की गोद में
पूरी दुनिया को समेट लूँगा मैं!
आओ, हम कठिनाइयों से भरी लंबी यात्रा पर चलें,

क्योंकि हमें मंजूर नहीं,
उद्देश्यहीन जीवन,
हम ऊंघते, कलम घसींटते
बदहाली और बेवसी में नहीं जिएंगे।
हम महत्वाकांक्षा, क्रोध, उत्साह और अभिमान के साथ जिएंगे

हम सच्चे इंसानों की तरह जिएंगे।

महिला वैज्ञानिक - मैरी क्यूरी

- राजपाल सिंह

7 नवम्बर 1867 को वर्तमान पोलैंड में जन्मी मैरी क्यूरी कोई साधारण वैज्ञानिक नहीं थीं। वह नोबेल पुरस्कार जीतने वाली पहली महिला थीं, वह दो बार नोबेल पुरस्कार जीतने वाली पहली वैज्ञानिक थीं, वह विज्ञान में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने वाली पहली महिला थीं, वह फ्रांस के प्रतिष्ठित सोरबोन विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप में नियुक्त होने वाली पहली महिला थीं। इस प्रकार, उन्होंने अपनी उपलब्धियों से विज्ञान की उन्नति में प्रमुख योगदान देने के साथ-साथ महिलाओं को विज्ञान की दुनिया में सम्मानजनक स्थान भी दिलाया।

ये उपलब्धियां उन्हें आसानी से नहीं मिलीं। इनके पीछे उनका अद्वितीय संघर्ष था, जिसे पढ़ते समय रोंगटे खड़े हो जाते हैं, और इस संघर्ष के पीछे जुनून की हद तक विज्ञान के प्रति उनकी प्रतिबद्धता थी। उनकी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ महान हैं, लेकिन जिन परिस्थितियों से गुजरकर उन्होंने ये उपलब्धियाँ हासिल कीं, वे उनके जीवन को और भी महान तथा प्रेरणादायी बनाती हैं। उनके बचपन के वर्षों के दौरान, एक तो उनका परिवार अत्यधिक गरीबी से गुजर रहा था, दूसरे, वे पोलिश राष्ट्र से थे, जो उस समय रूसी राष्ट्र द्वारा बहुत उत्पीड़ित था और पढ़ने-लिखने की कई सुविधाओं से वंचित था। उनके पिता स्कूल में गणित के शिक्षक थे, लेकिन पोलैंड के प्रति उनकी देशभक्ति की भावना के कारण उन्हें नौकरी से निकाल दिया गया था। इससे भी बदतर बात यह थी कि जब वह मात्र दस वर्ष की थी, तब उसे टीबी रोग होने का पता चला।उसकी माँ बीमारी से मर गयी। उन्होंने स्कूल में स्वर्ण पदक प्राप्त किया, लेकिन तत्कालीन गुलाम पोलैंड में महिलाओं के लिए आगे शिक्षा प्राप्त करने की कोई संभावना नहीं थी। वास्तव में, महिलाओं को वारसॉ विश्वविद्यालय में प्रवेश नहीं दिया जाता था। इन परिस्थितियों में, मैरी और उनकी बहन एक ''मोबाइल विश्वविद्यालय'' में दाखिल हो गई। यह 'मोबाइल विश्वविद्यालय' पोलिश युवाओं द्वारा विभिन्न विषयों पर ज्ञान प्रदान करने के लिए बनाया गया एक अध्ययन समूह था, जिसे रूसी अधिकारियों की निगरानी से बचने के लिए रात में विभिन्न स्थानों पर चलाया जाता था। इन पोलिश युवाओं का मानना था कि उनकी शिक्षा पोलिश राष्ट्र को स्वतंत्र करवाने में मदद करेगी, इसलिए जो कोई भी उस क्षेत्र का विशेषज्ञ होगा, वह दूसरों को उसके बारे में शिक्षित करेगा।



लेकिन यह स्पष्ट था कि इस प्रकार अर्जित ज्ञान नियमित विश्वविद्यालय शिक्षा के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं किया जा सकता था, इसलिए दोनों बहनों की पेरिस विश्लविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने की तीव्र इच्छा थी। लेकिन उनके पास इतने पैसे नहीं थे कि वे दोनों वहां जाकर पढ़ाई कर सकें। इस स्थिति में, मैरी क्यूरी ने सबसे पहले अपनी बड़ी बहन ब्रोनिया को पेरिस भेजा और अपना खर्च चलाने के लिए तीन साल तक घरों में आया के रूप में काम किया। अंततः वे पेरिस जाने के लिए पर्याप्त धन जुटाने में सफल रही। इस प्रकार 24 वर्ष की आयु में पेरिस में पढ़ाई करने का उनका सपना साकार हुआ।

पेरिस में उनकी पढ़ाई भी एक कठिन कार्य थी। गरीबी के कारण, उन्होंने बहुत ही घटिया कमरे किराए पर लिए, उनके पास ठंड से बचने के लिए पर्याप्त कोयला भी नहीं था, वे अपना सारा काम स्वयं करती थीं, परिवहन पर पैसे बचाने के लिए वे पैदल चलती थीं, लेकिन शिक्षा के प्रति उनमें इतनी लगन थी कि इतनी कठिन परिस्थितियों के बावजूद उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त करते हुए विश्वविद्यालय से विज्ञान में स्नातकोत्तर की डिग्री हासिल की। इस उपलब्धि के लिए उन्हें 600 रूबल की छात्रवृत्ति मिली, जिसकी मदद से उन्होंने अगले वर्ष गणित में मास्टर डिग्री हासिल की।मैरी की मुलाकात पियरे क्यूरी से हुई जो उससे दस साल बड़े थे और बहुत प्रतिभाशाली वैज्ञानिक

थे। क्यूरी में देशभक्ति की भावना बहुत प्रबल थी और वह पोलैंड लौटकर शिक्षिका बनना चाहती थी ताकि वह अपने देशवासियों के काम आ सके। वह पोलैंड भी चली गईं, लेकिन पियरे ने उनकी प्रतिभा को पहचान लिया। उनका मानना था कि पोलैंड जाकर वह समाज में बदलाव लाने में योगदान दे सकती हैं, लेकिन पेरिस में रहकर वह विज्ञान के क्षेत्र में और भी अधिक योगदान दे पाएंगी। इसलिए उन्होंने उसे एक पत्र लिखा और उसे वापस आने के लिए राजी कर लिया। पेरिस लौटकर उन्होंने जुलाई 1895 में पियरे से विवाह कर लिया और अगले वर्ष से उन्होंने भौतिकी में अनुसंधान का मार्ग चुना। उन्हीं वर्षों में रोएंटजन ने एक्स-रे की खोज की तथा वैज्ञानिक बेक्करेल ने यूरेनियम से निकलने वाले कुछ प्रकार के विकिरणों का पता लगाया। मैरी क्यूरी ने इन नई खोजों में गहरी रुचि दिखाते हुए अपने डॉक्टरेट शोध प्रबंध के लिए यूरेनियम द्वारा उत्सर्जित विकिरण पर व्यवस्थित अनुसंधान करने का निर्णय लिया। पियरे को भी यह क्षेत्र महत्वपूर्ण लगा और वे इस पर शोध करने में मैरी के साथ शामिल हो गये। इस क्षेत्र में कार्य करते हुए उन्होंने कई महत्वपूर्ण खोजें कीं, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण थी एक नए तत्व रेडियम की खोज, जो यूरेनियम से कई गुना अधिक रेडियोधर्मी था। फिर उन्होंने एक और नए तत्व की खोज की जिसका नाम उन्होंने अपने देश के सम्मान में पोलोनियम रखा। उन्होंने विकिरण उत्सर्जन की प्रक्रिया की व्याख्या की और इसे रेडियोधर्मिता नाम दिया। उन्हें और उनके पति को रेडियोधर्मिता पर उनके कार्य के लिए 1903 में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार दिया गया, जबकि उन्हें दो नए तत्वों, रेडियम और पोलोनियम की खोज के लिए 1911 में रसायन विज्ञान का नोबेल पुरस्कार दिया गया।

अपने प्रथम नोबेल पुरस्कार के बाद उन्हें काफी प्रसिद्धि मिली, लेकिन दम्पति इस प्रसिद्धि से नाखुश रहने लगे, क्योंकि इससे उनके शोध के शांतिपूर्ण माहौल में खलल पड़ रहा था। उनके जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी तब घटित हुई जब 1906 में एक सड़क दुर्घटना में उनके पति की मृत्यु हो गयी। वह पियरे से बहुत प्यार करती थी, वह न केवल उसका जीवन साथी था बल्कि विज्ञान में भी उसका साथी था। यह उनके लिए बहुत बड़ा झटका था और इससे निपटने के लिए उन्होंने स्वयं को और अधिक शोध कार्य में लगा दिया।

आज कैंसर का मुख्य उपचार विकिरण द्वारा होता है। यह विकिरण चिकित्सा मैरी क्यूरी और उनके पति की खोजों के साथ शुरू हुई। उन्होंने मानवता को यह महान उपहार दिया, लेकिन वे स्वयं 1934 में रक्त कैंसर से मर गये, जो उनके शोध कार्य के दौरान रेडियोधर्मी विकिरण के लगातार संपर्क में रहने के कारण हुआ था। इस प्रकार, सही मायने में उन्होंने अपना जीवन अपने खून की आखिरी बूंद तक विज्ञान को समर्पित कर दिया। **–संपादक तर्कशील पंजाबी**

इतिहास में, कई आविष्कारकों और वैज्ञानिकों ने मैरी क्यूरी की तरह ही अपनी ही सृजनाओं या शोध के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणामस्वरूप दुखद रूप से अपनी जान गँवाई है। वैज्ञानिक अपने जीवन की परवाह न करते हुए लोगों के जीवन को सुखमय बनाने के लिए अपने खुद के जीवन को कुर्बान कर देतें है। हम यहाँ कुछ वैज्ञानिकों की उदाहरण ले रहें हैं जिनका अपना जीवन अपने ही अविष्कार के कारण खत्म हो गया, मगर वो अपने अविष्कारों के कारण हमेशा अमर हैं :-

फ्रांज रीचेल्ट (1878-1912): ''फ्लाइंग टेलर'' के नाम से मशहूर, रीचेल्ट ऑस्ट्रिया में जन्मे एक फ्रांसीसी दर्जी थे जिन्होंने एक पहनने योग्य पैराशूट सूट डिज़ाइन किया था। इस उपकरण का परीक्षण करने के लिए एफिल टॉवर के निचले डेक से कूदने के बाद उनकी मृत्यु हो गई, जो कि किसी खराबी के कारण ठीक से खुल नहीं पाया।

थॉमस मिडगली जूनियर (1889-1944): एक अमेरिकी रसायनज्ञ जिन्होंने सीसायुक्त गैसोलीन और क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सीएफसी) का आविष्कार किया था, बाद में पोलियो के कारण विकलांग हो गए। उन्होंने बिस्तर से उठने में मदद के लिए रस्सियों और घिरनियों की एक परिष्कृत प्रणाली का आविष्कार किया था। उनकी मृत्यु उसी रस्सी और घिरनी वाले उपकरण में उलझकर हुई, जिसे उन्होंने स्वयं डिज़ाइन किया था।

विलियम बुलॉक (1813-1867): अमेरिकी आविष्कारक जिन्होंने रोटरी प्रिंटिंग प्रेस में उल्लेखनीय सुधार किया और वेब रोटरी प्रेस का निर्माण किया। नई मशीन लगाते समय एक दुर्घटना में उनका पैर उसमें फँस गया और उनकी मृत्यु हो गई। इस चोट के कारण उन्हें गैंग्रीन हो गया और बाद में अंग-विच्छेदन के दौरान उनकी मृत्यु हो गई।

मैक्स वैलियर (1895-1930): रॉकेट प्रणोदन के एक ऑस्ट्रियाई अग्रणी, वैलियर की मृत्यु तब हुई जब बर्लिन में उनके परीक्षण बेंच पर अल्कोहल-ईंधन वाले इंजन में विस्फोट हो गया, जब वे तरल-ईंधन वाले रॉकेट इंजन पर काम कर रहे थे।

विकास का मॉडल

– हिमांशु कुमार

–विकास का मतलब है

–और ज़्यादा अमीर बनना।

–अमीर होने का क्या मतलब है?

–इसका मतलब है हमारे पास हर चीज़ ज़्यादा होना अर्थात ज़्यादा पैसा, ज़्यादा ज़मीन, ज़्यादा घर।

–हाँ जी।

–अगर आप विकास करते हैं, तो आपके पास ज़्यादा पैसा होगा जिससे आप ज़्यादा गेहूँ, सब्जियाँ, ज़मीन वगैरह खरीद सकेंगे ?

–हाँ जी।

–क्या प्रकृति ने आपके लिए ज़्यादा ज़मीन बनाई है?

–नहीं, उसने सबके लिए बराबर ज़मीन बनाई है।

–तो फिर आपका विकास प्रकृति के नियम के विरुद्ध हुआ ना?

हाँ, बिल्कुल।

–जो लोग कड़ी मेहनत करते हैं, जैसे किसान, मज़दूर। क्या वे भी अमीर बनते हैं?

–नहीं, वे अमीर नहीं बनते।

–इसका मतलब है कि अमीर बनने के लिए मेहनती होना ज़रूरी नहीं है?

–हाँ, इसके लिए दिमाग़ की ज़रूरत होती है।

–क्या आप मानते हैं कि खेती और मज़दूरी के लिए दिमाग़ की ज़रूरत नहीं होती?

–हाँ, बिल्कुल नहीं।

–क्या आपने कभी खेती या मज़दूरी की है?

–नहीं।

–तो फिर आपको कैसे पता कि खेती और मज़दूरी में दिमाग़ की ज़रूरत नहीं होती?

–क्योंकि मज़दूर और किसान पढ़े-लिखे नहीं हैं।

–क्योंकि उनके गाँवों में अच्छे स्कूल नहीं हैं और उन्हें काम करना पड़ता है। इसलिए वे स्कूल नहीं जा पाते।

–अर्थात उनका शिक्षा प्राप्त न करना – उनकी जगह और जन्म के कारण होता है।

–हाँ, हाँ।

–तो क्या यह किसानों और मज़दूरों की गलती है?

–नहीं, यह उनकी गलती नहीं है।

–अगर उनकी गलती नहीं है, तो वे आपकी तरह विकास क्यों न करें?

–क्योंकि वे मेरी तरह काम नहीं कर सकते।

–आप ऐसा कौन सा काम करते हैं जो मज़दूर और किसान नहीं कर सकते?

–मैं कंप्यूटर पर काम करता हूँ।

–क्या घर पर कंप्यूटर पर काम करने से आप अमीर बन जाएँगे?

–नहीं, घर पर अपना काम करके हम अमीर नहीं बन जाएँगे, उसके लिए हमें किसी कंप्यूटर कंपनी में काम करना होगा।

–अच्छा, तो कंपनी आपको पैसे देगी, तो आप अमीर बन जाएँगे?

–हाँ, मैं कंपनी के पैसे से विकास करूँगा।

–कंपनी को पैसा कहाँ से मिलता है?

–कंपनी सामान बनाती है और उससे हमें पैसा देती है।

–जब कंपनी सामान बनाती है, तो ज़मीन, पानी वगैरह कहाँ से आते हैं?

–सरकार कंपनी को ज़मीन और पानी देती है।

–क्या सरकार ने ज़मीन और पानी खुद बनाया है?

–नहीं, सरकार लोगों से ज़मीन और पानी लेकर कंपनी को देती है।

–क्या लोग प्यार से सरकार को ज़मीन और पानी देते हैं? –

नहीं, लोग प्यार से नहीं देते। सरकार पुलिस भेजकर लोगों से ज़मीन और पानी छीन लेती है।

–अच्छा, जिनकी ज़मीन और पानी सरकार छीनकर कंपनी को देती है, वे तो बहुत अमीर लोग होंगे?

–अरे नहीं, सरकार तो गरीबों से ज़मीन और पानी छीन कर कंपनियों को देती है। खैर, आपका मतलब है कि आपका

विकास तब होता है जब गरीबों की ज़मीन छीन ली जाती है।

–हाँ, बिल्कुल।

–आपका मतलब है कि आपको अपने विकास के लिए गरीबों की ज़मीन चाहिए?

–हाँ।

–क्या आपको ज़मीन छीनने के लिए पुलिस की भी ज़रूरत है?

–हाँ, आपको पुलिस की भी ज़रूरत है।

–निहत्थे या हथियारबंद पुलिस?

–निहत्थे पुलिस का क्या फ़ायदा, हथियारबंद पुलिस तो चाहिए ही।

–आपका मतलब है कि आपको अपने विकास के लिए बंदूकों की भी ज़रूरत है।

–हाँ, आपको बंदूकों की भी ज़रूरत है।

–आपका मतलब है कि सरकारी हिंसा के बिना आप विकास नहीं कर सकते?

–हाँ, ऐसा नहीं हो सकता।

–तो, क्या आप इस सरकारी हिंसा का समर्थन करते हैं?

–हाँ, अगर आपको विकास करना है, तो हिंसा तो होगी ही।

–अगर आपकी इस हिंसा की वजह से गरीब आपकी पुलिस से लड़ने लगें, तो आप क्या करेंगे?

–हम और पुलिस भेजेंगे।

–अगर गरीब और भी ज़्यादा ज़ोरदार तरीके से लड़ने लगें, तो आप क्या करेंगे?

–तब हम सेना भेजेंगे।

–यानी आप अपने ही देश के गरीबों के खिलाफ देश की सेना का इस्तेमाल करेंगे?

–क्यों नहीं करेंगे...... हम विकास के लिए सेना का इस्तेमाल अवश्य करेंगे।

–अगर देश की सेना देश के गरीबों को ही मार डाले, तो क्या इसे गृहयुद्ध नहीं माना जाएगा?

–हाँ, हम विकास के लिए कोई भी युद्ध लड़ सकते हैं। हमारे प्रधानमंत्री ने कहा है कि जो भी हमारे विकास में बाधा डालता है, वह आतंकवादी है।

–अच्छा, तो फिर आप अपने देश के लोगों के खिलाफ विकास के लिए सेना का इस्तेमाल करेंगे।

–हाँ, हम तो अवश्य करेंगे ।

–क्या देश इसी दिन को देखने के लिए 'आजाद' हुआ था कि इस देश के संपन्न लोग देश के गरीबों के खिलाफ सेना का इस्तेमाल करेंगे।

–हाँ, हम विकास के लिए कुछ भी करेंगे।

(तो दोस्तों! यही है हमारा विकास मॉडल...)

खबर सार

(नई दिल्ली, देश क्लिक ब्यूरो : विज्ञान के युग में भी शिक्षित लोग अभी तक अंधविश्वास पर काबू नहीं पा सके हैं। अंधविश्वास का एक चौंकाने वाला मामला सामने आया है, जहां एक सरकारी कार्यालय में खोए रजिस्टर को ढूंढने के लिए सभी कर्मचारियों को दो मुट्ठी चावल कार्यालय में लाने का आदेश जारी किया गया। यह मामला उत्तराखंड से सामने आया है। यह आदेश चम्पावत जिले के लोहाघाट स्थित लोक निर्माण विभाग के राष्ट्रीय रक्षक दल प्रभाग कार्यालय के अभियंता द्वारा जारी किया गया है। ये आदेश सोशल मीडिया पर वायरल हो रहे हैं। अंधविश्वासी इंजीनियर आशुतोष कुमार ने आदेश जारी कर दिया है। आदेश में सभी अधिकारियों और कर्मचारियों को शनिवार को अपने घर से कार्यालय आते समय दो मुट्ठी चावल लाने को कहा गया है। यह चावल भगवान को अर्पित किया जाएगा। जारी आदेशों में कहा गया है कि ब्लॉक में कार्यरत वरिष्ठ सहायक अभियंता जय प्रकाश की सेवा पुस्तिका गुम हो गई थी। काफी देर तक तलाश करने के बाद भी वह नहीं मिला, जिससे अंधविश्वासी सहायिका और जय प्रकाश दोनों मानसिक रूप से परेशान हो गए।

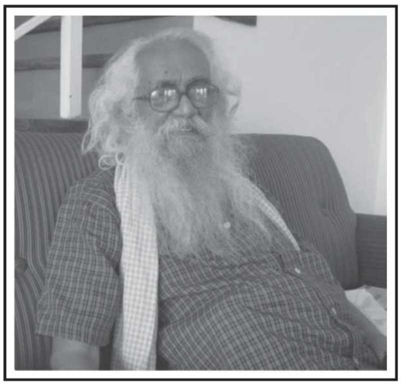
इस बीच अंधविश्वासी इंजीनियर ने एक अनोखा सुझाव देते हुए कहा कि सभी अधिकारी और कर्मचारी अपने घर से दो मुट्ठी चावल लेकर आएं और उसे भगवान को अर्पित करें। इससे सेवा बिंदुओं के अभाव की समस्या का समाधान हो सकता है। पत्र में सभी अधिकारियों और कर्मचारियों से शनिवार को दो मुट्ठी चावल साथ लाने को कहा गया है।

विभाग के मुख्य अभियंता राजेश चंद ने अंधविश्वासी इंजीनियर को नोटिस जारी कर मामले पर जवाब मांगा है। उनसे तीन दिन के भीतर स्पष्टीकरण देने को कहा गया है।

बी. प्रेमानंद के चैलेंज

भारत में तर्कशील आंदोलन को संगठनबद्ध करने वाले बसावा प्रेमानंद का चार अक्टूबर 2009 में देहांत हुआ था। कौन थे बसावा प्रेमानंद, यह उत्तर भारतीय कम ही जानते हैं। लेकिन उनकी मुहिम से जुड़कर आज देश में एक विशेष आंदोलन उठ खड़ा हुआ है। ऐसा आंदोलन, जिससे झूठ, फरेब, पाखंड की बुनियाद पर समाज को पीछे धकेलने वाले घबराते हैं। ऐसे लोगों की विज्ञान के आधार पर पोल खोलने के साथ ही यह आंदोलन संविधान के हवाले से बहुत से बदलाव की कोशिश कर चुका है, जिसके चलते कई कट्टरपंथियों ने कुछ की हत्या भी कर दी। डॉ. नरेंद्र दाभोलकर की हत्या इसी वजह से हुई। इसके इलावा गौरी लंकेश, प्रो कलबुर्गी,पानसरे आदि की भी इसी वजह से हुई।

आधुनिक तर्कशील आंदोलन के जनक कहे जाने वाले अब्राहम टी कोवूर के बाद बसावा प्रेमानंद ने इस अभियान की कमान संभाली, खासतौर पर भारत में। डॉ.कोवूर ने दशकों पहले कुछ चैलेंज दिए थे दुनियाभर के पीर-फकीर, ज्योतिषी, सिद्ध पुरुषों, बाबाओं, जादूगरों को कि इनमें से कोई एक भी काम कर दें तो उनको नकद इनाम दिया जाएगा। यह चैलेंज बाद में बसावा प्रेमानंद ने और उनके आंदोलन से जुड़ी तमाम तर्कशील संस्थाओं ने जारी रखा है। नकद इनाम की रकम करोड़ों में पहुंच चुकी है। चैलेंज स्वीकार कर कुछ आए भी, लेकिन कामयाब कोई नहीं हो सका।



यह हैं तर्कशील आंदोलन के चैलेंज

1. भूत-प्रेत, जिन्न साबित करने वाले को।
2. तांत्रिक, स्याणा (घुड़ल्या) झाड़-फूंक द्वारा शक्ति दिखाना।
3. किसी शक्ति द्वारा किसी भी व्यक्ति पर मूठ (चौकी) छोड़ना।
4. किसी भी गंडा, ताबीज, लोकेट, अंगूठी आदि द्वारा शक्ति दिखाना।
5. नजर, टोक लगाने व उतारने वाले को।
6. यंत्र, मंत्र, तंत्र, द्वारा कोई भी शक्ति साबित करने वाले को।
7. गुम हुई वस्तु को खेज सके।
8. पानी को शराब / पेट्रोल में बदल सके।
9. पानी के ऊपर पैदल चल सके।
10. योग/देव शक्ति से हवा में उड़ सके।
11. सील बंद नोट का नंबर पढ़ सके।
12. ताला लगे कमरे में से शक्ति से बाहर आ सके।
13. अपने शरीर को एक स्थान पर छोड़ कर किसी दूसरे स्थान पर प्रकट हो सके।
14. जलती हुई आग पर अपने देवता की सहायता से 1 मिनट तक खड़ा हो सके।
15. ऐसी वस्तु जिसे मांगें, उसे हवा में से प्रस्तुत कर सकता हो।
16. प्रार्थना, आत्मिक शक्ति, गंगा जल, या पवित्र राख (भभूत) से अपने शरीर के अंग को पांच इंच बढा सकता हो और शरीर का भार (वजन) बढा सकता हो।
17. पुनर्जन्म के कारण कोई अद्भुत भाषा बोल सकता हो।
18. ऐसी आत्मा या भूत-प्रेत को पेश कर सके, जिसकी फोटो ली जा सकती हो और फोटो लेने के बाद फोटो से गायब हो सकता हो। ऐसे ज्योतिषी जो यह कहकर लोगों को गुमराह करते हैं कि ज्योतिष और हस्त रेखा एक विज्ञान है, उपरोक्त ईनाम को जीत सकते हैं, यदि वे दस हस्त चित्रों व दस ज्योतिष पत्रिकाओं (जन्म कुण्डली) को देखकर आदमी और औरत की अलग-2 संख्या व जन्म का ठीक समय व स्थान अक्षांस रेखा के साथ बता दें।

भारतीय तर्कवादी आंदोलन के प्रवर्तक बी प्रेमानंद ने 4 अक्टूबर 2009 को तमिलनाडु के पोदन्नूर में 79 साल की उम्र में अंतिम सांस ली। उनकी इच्छा के अनुसार उनका शरीर स्थानीय मेडिकल कॉलेज को दान कर दिया गया।

17 फरवरी, 1930 को कोझीकोड (केरल) में जन्मे प्रेमानंद बचपन में भी असामान्य घटनाओं के गहराई से समझने

की कोशिश करते थे। किशोरावस्था में उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि हासिल करने को कई स्वामी और गुरुओं से संपर्क किया, लेकिन जल्द ही उनका भ्रम टूट गया जब पता चला कि वे पाखंड करते थे।

1969 में प्रेमानंद की मुलाकात श्रीलंकाई तर्कशील डॉ. अब्राहम कोवूर से हुई, जो ''चमत्कारों का पर्दाफाश'' व्याख्यान दौरे के लिए भारत में थे। यह प्रेमानंद के जीवन का अहम मोड़ था, जो आध्यात्मिक चालबाजों को भगाने के अभियान में मील का पत्थर साबित हुआ।

1978 में डॉ. अब्राहम कोवूर के देहांत के बाद प्रेमानंद ने कोवूर की प्रसिद्ध चुनौती को जारी रखा, जो धोखाधड़ी-सबूत शर्तों के तहत मानसिक क्षमताओं का प्रदर्शन करने वाले किसी भी व्यक्ति को एक लाख रुपये की पेशकश रखी गई।

तीन दशकों से ज्यादा समय तक प्रेमानंद ने भारत के तमाम गांव और कस्बों का दौरा किया और पांखडी संतों और उनके चमत्कारों का पर्दाफाश किया, शिक्षितों और आम लोगों के लिए विज्ञान कार्यशालाओं का आयोजन किया, सार्वजनिक व्याख्यान और प्रदर्शन दिए।

उन्होंने तर्कशील सोच फैलाने के मिशन के साथ लगभग 49 देशों का दौरा किया। वैज्ञानिक जागरूकता फैलाने के उनके प्रयासों के लिए उन्हें भारत सरकार के राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद ने फैलोशिप दी।

प्रेमानंद का सबसे सनसनीखेज पर्दाफाश पुट्टपर्थी साईं बाबा की पोल खोलना रहा। एक बार उन्होंने आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में साईं बाबा के खिलाफ इंडियन गोल्ड कंट्रोल एक्ट के तहत एक दीवानी रिट याचिका भी दायर की थी। वह चाहते थे कि सरकार साईं बाबा के खिलाफ 'हवा से सोना बनाने' के दावे और चमत्मकार पर कार्रवाई करे, क्योंकि यह गोल्ड कंट्रोल एक्ट की धारा 11 का उल्लंघन था, जिसमें सोने के निर्माण के लिए गोल्ड कंट्रोल एडमिनिस्ट्रेटर की अनुमति अनिवार्य थी।

यह देखते हुए कि भारतीय समाज के सभी वर्गों में संतों का दबदबा है, यह बिल्कुल भी आश्चर्य की बात नहीं है कि इस मामले को अदालत ने खारिज कर दिया।

प्रेमानंद ने 6 जून 1993 को साईं बाबा के आश्रम में छह व्यक्तियों की कुख्यात हत्या पर अभिलेखों का एक विशाल संग्रह संकलित किया है और इसे 800 से अधिक पृष्ठों की किताब (साईं बाबा के बेडरूम में हत्या) को प्रकाशित किया। यह पुस्तक उन लोगों के लिए बेहतरीन तथ्य संग्रह है, जो आश्रम में संदिग्ध व्यवहार के पीछे की सच्चाई जानना चाहते हैं।

दो दशकों से ज्यादा समय तक प्रेमानंद ने तर्कशील और वैज्ञानिकता के प्रसार को समर्पित मासिक पत्रिका 'इंडियन स्केप्टिक' प्रकाशित की। यह पत्रिका बेहिसाब धार्मिक देश में विभिन्न तर्कशील समूहों और व्यक्तियों के बीच अमूल्य थी।

स्केप्टिक बुक क्लब' के माध्यम से उन्होंने संतों और उनकी हरकतों को उजागर करने वाली कई किताबें निकाली। उनकी सबसे लोकप्रिय पुस्तक, साइंस वर्सेस मिरेकल, लगभग 150 ''चमत्कारों'' की प्राकृतिक व्याख्या देती है, जिनमें भारत में आमतौर पर भगवानों द्वारा किए जाने वाले चमत्कार शामिल हैं।

नवंबर 2006 में प्रेमानंद को कैंसर का पता चला और उनकी एक बड़ी सर्जरी हुई। बावजूद इसे उन्होंने अपने मिशन को जारी रखा। सर्जरी कराने के कुछ ही हफ्ते बाद प्रेमानंद ने जनवरी 2007 में बैंगलोर में तर्कशीलों की एक बैठक में भाग लिया, जब बैंगलोर विचारवादी संघ (बैंगलोर रैशनलिस्ट एसोसिएशन) की स्थापना हुई थी।

उन्होंने फेडरेशन ऑफ इंडियन रेशनलिस्ट एसोसिएशन (FIRA) के छठे राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लिया, जिसके वे संस्थापक-संयोजक थे। अप्रैल 2007 में पुणे में आंध्रश्रद्धा निर्मूलन समिति, महाराष्ट्र ने भारत में तर्कवादी आंदोलन में उनके योगदान के लिए सम्मानित किया। दिसंबर 2007 में तिरुवनंतपुरम में आयोजित केरल युक्तिवादी संगम (केरल तर्कवादी संघ) के 25वें राज्य सम्मेलन में भाग लिया।

प्रेमानंद ने 2008 के अंत तक एक भी मिशन को आगे बढ़ाने का एक भी मौका नहीं छोड़ा। हर महीने इंडियन स्केप्टिक को प्रकाशित करना जारी रखा और अपने स्केप्टिक बुक क्लब के माध्यम से तर्कवाद पर पुस्तकें प्रकाशित करते रहे।

यहां तक कि खराब स्वास्थ्य के बावजूद उन्होंने 5 मार्च 2009 को तमिलनाडु के पोदन्नूर में विज्ञान की विधि पर एक स्थायी प्रदर्शनी को पूरा कराया और सार्वजनिक रूप से खोला। मैंगलोर की उनकी अंतिम यात्रा जुलाई में हुई थी जब उन्होंने साथी तर्कवादियों और विचारकों के साथ बातचीत की थी

तर्कशील विश्वासों पर उनकी प्रतिबद्धता अब एक प्रेरक दस्तावेज है, जो कई तर्कवादी और विज्ञान से जुड़ी वेबसाइटों और पत्र-पत्रिकाओं में मौजूद हैं।

स्त्रोत : इंडियन स्केप्टिक

शरीर में देवी-भूत प्रवेश की वास्तविकता

-धर्मेन्द्र आज़ाद

ग्रामीण भारत में आज भी ऐसे दृश्य आम हैं-गाँव का मंदिर रोशनी से जगमगा रहा है, ढोल-मजीरे बज रहे हैं, भजन-कीर्तन हो रहे हैं। औरतें झूम रही हैं, बच्चे तालियाँ बजा रहे हैं। तभी अचानक भीड़ में से एक महिला काँपने लगती है, आँखें उलट जाती हैं, हाथ-पाँव बेकाबू हो जाते हैं और वह चिल्लाती है- ''मैं देवी हूँ! सबको आशीर्वाद दूँगी!''। लोग घबरा जाते हैं-कुछ डरकर पीछे हटते हैं, कुछ पैरों में गिर जाते हैं। फिर ओझा आता है, राख फेंकता है, मंत्र पढ़ता है, और जब महिला धीरे-धीरे शांत होती है, तो भीड़ राहत की साँस लेती है। सब मान लेते हैं कि सचमुच देवी उतर आई थीं।

लेकिन सवाल यह है कि क्या सचमुच कोई देवी-भूत शरीर में घुस जाता है? या यह पूरा ''सीरियल'' हमारे दिमाग़ और शरीर का ही प्रोडक्शन है?

असल में, ऐसी घटनाएँ केवल भारत में नहीं होतीं। फर्क बस नाम का है। भारत में इसे ''देवी-भूत चढ़ना'' कहते हैं, अफ्रीका में Spirit Possession (आत्मा का प्रवेश), अमरीका में Great Awakening (धार्मिक जागरण) और यूरोप में Spiritism (स्पिरिटिज़्म) कहा गया। ढोल बजे, लोग झूमें, और किसी पर अचानक ''बाहरी शक्ति उतर आई-कहानी सब जगह एक जैसी रही।

उत्तराखंड की परंपरा जागरी इसका ज़िंदा उदाहरण है। यहाँ आज भी मान्यता है कि किसी ख़ास व्यक्ति पर कुलदेवता की आत्मा प्रवेश कर जाती हैं। ढोल- मजीरें बजते हैं, भीड़ जमा होती है, और कोई व्यक्ति काँपते-चिल्लाते हुए कहता है- ''मेरे भीतर देवता बोल रहे हैं।'' अफ्रीकी जनजातियों में भी यही होता है-सामूहिक नृत्य, ढोल की थाप, और फिर अचानक कोई दावा करता है कि पूर्वजों की आत्मा उसके शरीर में आ गई है।

इतिहास भी ऐसे उदाहरणों से भरा है। अमरीका के Salem Witch Trials (सलेम विच ट्रायल्स) को ही लीजिए। 1692 में मैसाचुसेट्स की कुछ किशोरियाँ अचानक अजीब हरकतें करने लगीं-काँपना, चीखना, अनजानी भाषा बोलना। समाज ने इसे शैतान का असर मान लिया और कई औरतों को ''डायन'' बताकर मार डाला। आज वैज्ञानिक मानते हैं कि यह कोई शैतान नहीं था, बल्कि तनाव, ट्रांस और मानसिक दबाव का असर था।

वैज्ञानिकों ने इस रहस्य का राज़ सैकड़ों साल पहले खोलना शुरू कर दिया था। 1770 के दशक में ऑस्ट्रिया के डॉक्टर फ्रांज़ एंटोन मेस्मर (Franz Anton Mesmer) अपने मरीजों को मोमबत्ती जलाकर, रहस्यमयी हाथों की हरकतें दिखाकर ऐसी अवस्था में ले जाते थे, जिसमें लोग रोने, हँसने या बेहोश होने लगते थे। उनकी इस कला को उनके नाम से जोड़कर "Mesmerism" (मेस्मेरिज़्म) कहा जाने लगा। वे अपने मरीजों को Trance (ट्रांस - सम्मोहन जैसी अवस्था) में ले जाते थे। आज हम इसे "Hypnotism" (हिप्नोटिज़्म - सम्मोहन) कहते हैं। उन्होंने कहा कि शरीर में कोई चुंबकीय द्रव (Magnetic Fluid) है जो किसी ख़ास माहौल में हरकत में आ जाता है, यही ट्रांस की अवस्था है, इसे मानसिक बीमारियों का इलाज करने में इस्तेमाल किया जा सकता है।

करीब सौ साल बाद, पेरिस के डॉक्टर जीन-मार्टिन शार्को (Jean-Martin Charcot) ने पाया कि ढोल-नगाड़े, भीड़ और धार्मिक ऊर्जा मिलकर इंसान को सम्मोहन जैसी स्थिति में पहुँचा देती हैं। उनके छात्र फ्रायड ने आगे कहा कि जिन लोगों के साथ यह होता है, उनके भीतर पहले से ही दबा हुआ तनाव या आघात होता है। जैसे-लंबे समय तक दबा गुस्सा, बार-बार अपमान, अपनी बात न कह पाने की आदत या फिर धार्मिक माहौल में लगातार भावनात्मक दबाव। फ्रायड के मुताबिक यह सब "Unconscious Mind" (अवचेतन मन) का खेल है-जितना दबाओगे, उतना ज़ोर से फटेगा।

अब आधुनिक विज्ञान और गहराई से बताता है कि इस दौरान शरीर में क्या होता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि एक खास माहौल में, कभी कभी बिना माहौल के भी, कुछ विशिष्ट कारणों से कुछ लोगों में दिमाग़ का Amygdala (एमिग्डाला - डर और भावनाओं का सेंटर) अचानक अलर्ट कर देता है- ''खतरा है!''। Sympathetic Nervous System (सिंपैथेटिक नर्वस सिस्टम - तनाव की स्थिति वाली प्रणाली)

चालू हो जाता है। खून में Adrenaline (एड्रेनालिन - उत्तेजना का हॉर्मोन) और Cortisol (कॉर्टिसोल - तनाव का हॉर्मोन) बाढ़ की तरह दौड़ पड़ते हैं। दिल धक-धक करता है, साँसें तेज़ हो जाती हैं, हाथ-पाँव काँपने लगते हैं। और सबसे दिलचस्प-Prefrontal Cortex (प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स-तर्क और लॉजिक वाला हिस्सा) अस्थायी रूप से ऑफ़लाइन हो जाता है। यानी इंसान को सचमुच लगता है- ''मैं नहीं बोल रहा, कोई और बोल रहा है।''

भारत में ज़्यादातर ऐसे मामले महिलाओं या दबे-कुचले पुरुषों के साथ देखे गए हैं। खेतों का काम, घर का दबाव, समाज का अपमान-ये सब मन के भीतर जमा होता रहता है। और जब ढोल-नगाड़े और जगराते का माहौल बनता है, तो सारा तनाव एक झटके में बाहर निकल पड़ता है। महिला काँपती-चीखती है, बोझ हल्का करती है। और समाज कह देता है- ''इस पर देवी चढ़ी है।'' दिलचस्प यह कि जिसे रोज़ कोई नहीं सुनता, उसी की अचानक सब सुनने लगते हैं। यानी यह एक तरह का "Release Valve" (रिलीज़ वाल्व - दबाव निकालने का जरिया) भी है।

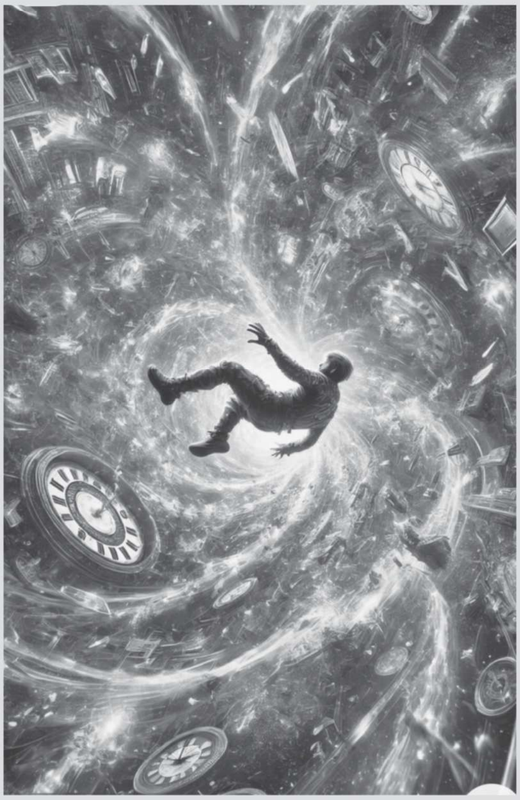
विज्ञान की भाषा में इसे कहते हैं-Psychosomatic Response (साइकोसोमैटिक रिस्पॉन्स - मानसिक तनाव का शारीरिक असर)। यानी मन, दिमाग़, हॉर्मोन और समाज- सब मिलकर एक पूरा पैकेज बना देते हैं।

आज यूरोप और अमरीका में ऐसे मामलों को मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health) के तहत देखा जाता है, लेकिन भारत, अफ्रीका और दूसरे पारंपरिक समाजों में यह अब भी देवी-भूत या आत्मा का प्रवेश कहलाता है। हाल ही में उत्तराखंड और झारखंड के कुछ स्कूलों में देखा गया कि बिना किसी संगीत या भजन-कीर्तन के भी कई बच्चे एक साथ चीखने-काँपने लगे। डॉक्टरों ने जाँचकर बताया कि यह "Mass Psychogenic Illness" (सामूहिक मनोवैज्ञानिक बीमारी) है। यानी तनाव और डर का असर जब सामूहिक रूप से फूट पड़ता है तो पूरा समूह एक ही जैसा व्यवहार करने लगता है।

तो सच्चाई यह है कि ट्रांस कोई अलौकिक घटना नहीं, बल्कि इंसान की भावनाओं, उसके दिमाग़, शरीर और समाज के दबाव का मिला-जुला असर है।

–धर्मेन्द्र आज़ाद

अंधविश्वास और ज्योतिष



हमें उन लोगों की संख्या भी बहुत कम करनी चाहिए जो एक विशेष रंग के वस्त्र पहनते हैं और खुद को संत कहते हैं। ये बदमाश हैं जो मेहनतकशों की कमाई पर पलते हैं। धार्मिक पुरुष और महिलाएं अक्सर जनमत और सरकार को प्रभावित करने में लगे रहते हैं। एक कौम के रूप में, हम अंधविश्वासी हैं और बहुत ज़हीन भारतीयों के लिए भी यह असामान्य नहीं है, स्मेत कुछ मार्क्सवादियों के कि यह सभी लोग महत्वपूर्ण निर्णय लेते समय शुभ मुहूर्त जानने के लिए ज्योतिषियों से परामर्श लेते हैं। हमारे देश में अंधविश्वास और ज्योतिष को धार्मिक मान्यता प्राप्त है। मुझे ज्योतिष में विश्वास रखने वालों से चिढ़ है। मुझे लगता है कि देश के उच्च पदों पर बैठे लोगों को इस तरह के पचड़े में नहीं पड़ना चाहिए। ऐसी मान्यताओं और रीति-रिवाजों में पड़ना देश के लिए बहुत खतरनाक और प्रतिगामी है।

खुशवंत सिंह

(मेरे जीवन के सबक से)

कुछ यूट्यूब चैनलों की जानकारी-2

-जसवंत मोहाली

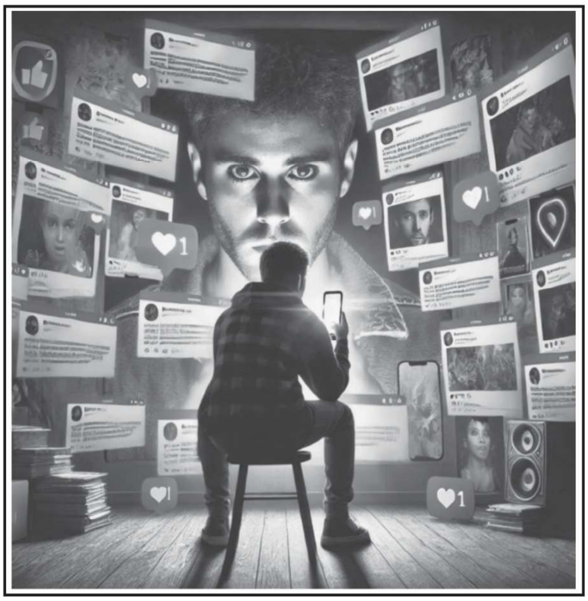
पिछले अंक में राजनीतिक और चलंत विषयों पर आधारित कुछ यूट्यूब चैनलों की जानकारी दी गई थी। इनके अलावा, कुछ और बड़े चैनलों के नाम भी इसी कड़ी में शामिल हैं। इनमें 'द वायर', 'स्क्रॉल डॉट इन', 'काउंटर करंटस' आदि तत्कालीन मुद्दों पर विश्वसनीय और खोजी पत्रकारिता के उदाहरण हैं। सिर्फ़ वीडियो ही नहीं, अगर आप सिर्फ़ ऑडियोबुक सुनना चाहते हैं, तो वो ऐप्स भी उपलब्ध हैं। आप जिस तरह का विषय देखते हैं, पसंद करते हैं या शेयर करते हैं, उस रुचि का कंटेंट यूट्यूब खोलते ही आपके सामने उपलब्ध हो जाता है। कुछ हस्तियाँ ऐसी भी होती हैं जो एक संस्था जितना काम करती हैं। मशहूर लेखक और गीतकार जावेद अख्तर के अनगिनत वीडियो आप यूट्यूब पर देख सकते हैं, जो बेहद रोचक और ज्ञानवर्धक हैं।

यहां पर अंधविश्वासों, मिथकों और चमत्कारी बाबाओं का पर्दाफ़ाश करने वाले और वैज्ञानिक जानकारी देने वाले अनगिनत चैनल तो हैं ही, वहीं क्वांटम फ़िज़िक्स जैसे भारी-भरकम वैज्ञानिक शब्दों का इस्तेमाल करके अज्ञानता फैलाने वाले और बिना सूत्रों के इतिहास को तोड़-मरोड़ कर पेश करने वाले चैनल भी मौजूद हैं। किसी भी वीडियो को दिया गया एक मसालेदार शीर्षक भी दर्शकों की संख्या बढ़ा देता है। उदाहरण के लिए, एक चैनल पर एक वीडियो का शीर्षक, '-इंदिरा गांधी का तीसरा बेटा कौन है?'', उसके दर्शकों की संख्या 60 लाख तक पहुँच गई। बात बस इतनी थी कि बच्चन परिवार और गांधी परिवार की दोस्ती के कारण इंदिरा गांधी अमिताभ बच्चन को अपना तीसरा बेटा मानती थी। अच्छी बात यह है कि कड़ी मेहनत से विज्ञान और तथ्यों पर आधारित जानकारी देने वाले समर्पित यूट्यूबर भी डटे हुए हैं। पेश है उनमें से कुछ का संक्षिप्त विवरण -

वैज्ञानिक जानकारी

अर्पित ऐक्सपलेंज़ -Arpit Explains

(2.3 लाख सब्सक्राइबर) : अर्पित के वीडियो ज़्यादातर वैज्ञानिक घटनाओं पर चर्चा करते हैं, जैसे कार्बन डेटिंग क्या है, डी.एन.ए. क्या है, डार्विन का सिद्धांत, आदि।अपने नवीनतम वीडियो में, वे इस बात पर चर्चा कर रहे हैं कि भारतीयों के कमज़ोर शरीर और बढ़े हुए पेट का क्या कारण है? ज़्यादातर भारतीय 60 साल की उम्र पार करने के बाद थके-थके हुए क्यों दिखते हैं? इसका कारण हमारे आहार में प्रोटीन की कम मात्रा है। हमारे देश में दुनिया की सबसे ज़्यादा शाकाहारी आबादी है। भारत की 40 प्रतिशत आबादी शाकाहारी प्रोपेगंडे का शिकार है। हमारी थाली में चावल, दो चपाती, थोड़ी दाल और सब्ज़ी होती है। अगर आप रोज़ाना यही खाना खा रहे हैं, तो आप प्रोटीन कम और कार्बोहाइड्रेट ज़्यादा ले रहे हैं। इसके अलावा, ओशो की पड़ताल, मैं आचार्य प्रशांत की आलोचना क्यों करता हूँ, वेदों में कितना विज्ञान है, बिग बैंग से पहले क्या था और फेथ वर्सिज फैक्ट (Faith versus Fact) आदि वीडियो लाखों लोगों ने देखे हैं।



लॉजिकल आयाम- Logical Aayaam

(सब्सक्राइबर 97 हज़ार) लगभग दो साल पहले शुरू हुआ यह चैनल विश्वसनीय और सरल भाषा में वैज्ञानिक जानकारी प्रदान करता है। इस चैनल का सबसे बड़ा योगदान इंस्टाग्राम पर फैलाए जा रहे सूडो विज्ञान, यानी विज्ञान के नाम पर आधी-अधूरी या गलत जानकारियों को वैज्ञानिक तथ्यों और तर्कों के साथ उजागर करना है। सबसे ज़्यादा देखे गए वीडियो (करीब साढ़े तीन लाख बार) में से एक स्टीफन

हॉकिंग की आखिरी किताब 'बड़े सवालों के संक्षिप्त जवाब' (Brief Answers to Big Questions) का सारांश है। दुनिया बनाने के लिए तीन चीज़ों की ज़रूरत थी- पदार्थ, ऊर्जा और स्पेस । जब आइंस्टीन ने कहा कि पदार्थ और ऊर्जा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, यानी दोनों एक-दूसरे में बदल सकते हैं, तो दो चीज़ों की ज़रूरत पड़ी : ऊर्जा और स्पेस। कहा जाता है कि यह सारा स्पेस 'कुछ नहीं' से बना है, इसलिए ऊर्जा और नैगटिव ऊर्जा की अवधारणा चलन में आई |जैसे किसी समतल जगह पर पहाड़ खड़ा करने के लिए गहरा गड्ढा खोदना पड़ता है। या जैसे एक और नैगटिव एक मिलकर शून्य हो जाते हैं। इसी नैगटिव ऊर्जा को स्पेस माना जाता है। इस चैनल के कुछ वीडियो सशुल्क हैं जिन्हें सदस्यता लेने के बाद ही खोला जा सकता है।

ऐतिहासिक जानकारी के लिए :

डॉ. राम पुनियानी - Dr. Ram Puniyani

(9.73 लाख सब्सक्राइबर) प्रख्यात इतिहासकार डॉ. राम पुनियानी के नाम से चलने वाले इस चैनल पर टीपू सुल्तान के बारे में सिर्फ़ पाँच मिनट के वीडियो के लगभग 7 लाख दर्शक हैं। अंग्रेजों ने टीपू सुल्तान के खिलाफ दुष्प्रचार इसलिए शुरू किया क्योंकि उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ समझौता करने से इनकार कर दिया था। वे जानते थे कि अंग्रेजों को अकेले- लड़कर नहीं हराया जा सकता, इसलिए उन्होंने निज़ाम और मराठों के साथ गठबंधन करने की कोशिश की। लेकिन मौजूदा सांप्रदायिक सरकार सिर्फ़ अंग्रेजों के प्रोपेगंडे को बढ़ावा दे रही है। राम पुनियानी बताते हैं कि ऐतिहासिक तथ्य यह है कि टीपू सुल्तान ने आशीर्वाद लेने के लिए लिखे एक पत्र में कांची कामकोट्टम पीठ के शंकराचार्य को 'जगत गुरु' कहकर संबोधित करता था। राम पुन्यानी के इतिहास पर आधारित वीडियो लाखों लोग देखते हैं, जबकि राजनीतिक वीडियो देखने वालों की संख्या सैकड़ों या हज़ारों तक ही सीमित है। आप इतिहास की किताबों के पाठ्यक्रम में बदलाव, तीन तलाक़ क़ानून, हिंदुस्तान के नाम को लेकर 'इंडिया या भारत' विवाद और इतिहास के बारे में फैलाए जाने वाले ज़्यादातर आम मिथकों के बारे में सटीक जानकारी यहाँ से प्राप्त कर सकते हैं।

नास्तिकता

हिमांशु का लैक्चर -Himanshu Ka Lecture

(97 हज़ार सब्सक्राइबर) उनके लगभग सभी वीडियो या तो नास्तिकता पर आधारित होते हैं, यानी ईश्वर की अवधारणा से सीधे टकराव पर, या फिर कई वीडियो में जग्गी वासुदेव जैसी बाबागिरी या कुंभ के दौरान मशहूर हुए 'आई.आई.टी.' बाबा, का अच्छे तरीके से पर्दाफाश किया है। वे अपनी बात खुलकर कहते हैं। धर्म और महिलाएँ, शीर्षक वाले अपने वीडियो में वे कहते हैं, ''अगर सब कुछ धर्म के हिसाब से होता, तो न ऐश्वर्या राय मिस वर्ल्ड बन पातीं और न ही सानिया मिर्ज़ा अंतरराष्ट्रीय खिलाड़ी। हम नास्तिक महिलाओं को न तो दासी और न ही देवी मानते हैं । हम उन्हें इंसान मानते हैं ताकि उनके मानवाधिकारों और स्वतंत्रता का सम्मान हो....।'' इसी तरह, उनके सबसे ज़्यादा देखे गए वीडियो में, जिसे चार लाख अस्सी हज़ार बार देखा जा चुका है, वे कहते हैं, ''जिन देशों में नदियों को देवी नहीं, बल्कि नदी माना जाता है, वहाँ नदियों की स्थिति बेहतर है। जिन देशों में महिलाओं को देवी नहीं, बल्कि महिला माना जाता है, वहाँ महिलाओं की स्थिति बेहतर है।'' उनकी बात कहने का अपना एक अनोखा अंदाज़ है जो बेहद प्रभावशाली है। उनके ज़्यादातर वीडियो दूसरे लोकप्रिय चैनलों के झूठ को नंगा करने के लिए बनाए गए हैं, यही वजह है कि उनमें वैचारिक कंट्रास्ट बेहद दिल को छू लेने वाला होता है।

समाज का सच-Samaj Ka Sach

(39 हज़ार सब्सक्राइबर) इस चैनल पर ताज़ा वीडियो, ''अमरनाथ का सच: चमत्कार या विज्ञान?'', ने इसके प्राकृतिक, सामाजिक और राजनीतिक पहलुओं पर प्रकाश डाला है। इस वीडियो को 30 हज़ार लोगों ने देखा है। लगभग सभी ने छह सौ टिप्पणियों में इसका समर्थन किया है। इसी तरह, ''नास्तिकों के तर्क, जिनका आस्तिकों के पास कोई जवाब नहीं'' वीडियो को 1.7 लाख लोगों ने देखा और दो हज़ार से ज़्यादा टिप्पणियों में इस पर चर्चा हुई। यह चैनल शशि कुशवाहा द्वारा संचालित है। मिर्ची बाबा पर बनाए गए वीडियो को डेढ़ लाख लोगों ने देखा। मिर्ची बाबा ने दिग्विजय सिंह की चुनाव में जीत सुनिश्चित करने के लिए मिर्चा का यज्ञ किया था और दिग्विजय सिंह के हारने पर उसी यज्ञ में समाधि लेने का संकल्प लिया था। दिग्विजय सिंह हार गए, लेकिन बाबा ने अपना वादा नहीं निभाया। दो साल बाद बाबा को बलात्कार के एक मामले में गिरफ्तार कर लिया गया।

जातिवाद और मिथकों का पर्दाफ़ाश :

*अर्जक संघ ऑफिशियल टीवी: (6.73 लाख): यह चैनल अर्जक संघ द्वारा संचालित है, जिसका मुख्य कार्यक्षेत्र उत्तर प्रदेश और बिहार रहा है इसका मुख्य उद्देश्य अंधविश्वास और जातिवाद के विरुद्ध मानवतावाद को बढ़ावा देना है। ज़्यादातर वीडियो में अरुण कुमार गुप्ता जी ठेठ बिहारी अंदाज में बात करते हैं। अंधविश्वासों और चमत्कारों को उजागर करने वाले वीडियो के दर्शक हज़ारों में हैं, जबकि पौराणिक हिंदू कथाओं का तर्क से विश्लेषण करने वाले वीडियो के दर्शक लाखों में हैं क्योंकि मिथकों और धार्मिक कर्मकांडों पर तर्क और व्यंग्य बहुत तीखे और रोचक हैं। ताज़ा वीडियो केंद्रीय मंत्री अनुराग ठाकुर द्वारा गलत सूचना पर आधारित विवादास्पद बयान पर है। मंत्री जी ने स्कूली बच्चों से पूछा कि दुनिया का पहला अंतरिक्ष यात्री कौन था, बच्चों ने जवाब दिया- नील आर्मस्ट्रांग। मंत्री जी कहते हैं, ''मुझे लगता है कि हनुमान जी थे। मैं हेडमास्टर जी और शिक्षकों से भी कहता हूँ कि वे स्कूल की किताबों से आगे बढ़कर बच्चों को वेदों और परंपराओं के बारे में सिखाएँ।'' वीडियो में कहा गया है- मंत्री जी अपने बच्चों को विदेश में पढ़ाते हैं और हमारे देश के बच्चों को अंधविश्वास में फँसाए रखना चाहते हैं। (वैसे अंतरिक्ष यात्री यूरी गगारिन थे)

रोचक जानकारी वाला खुला चैनल :

DW (Deutsche Welle) हिंदी

(45.4 लाख सब्सक्राइबर)

एक दिन जब मैंने यूट्यूब ऐप खोला, तो 'वो कौन थी विद ईशा भाटिया' नाम का एक पॉडकास्ट आया, जिसमें ईशा भाटिया बड़ी सहजता और मेहनत से प्रसिद्ध वैज्ञानिक मैरी क्यूरी के बारे में जानकारी दे रही थीं। यह पॉडकास्ट DW हिंदी चैनल पर चल रहा था। मूलत:, यह जर्मन सरकार के वित्तीय सहयोग से संचालित एक स्वतंत्र अंतर्राष्ट्रीय चैनल है, जो 30 भाषाओं में विभिन्न विषयों पर समाचार, शिक्षा और रोचक जानकारी प्रदान करता है। इस चैनल पर स्वास्थ्य संबंधी कुछ वीडियो 2-6 करोड़ बार देखे जा चुके हैं। चार साल पहले DW डॉक्यूमेंट्री हिंदी चैनल शुरू किया जिसके 7 लाख सब्सक्राइबर हैं।

पुस्तकों का महत्व



ज्ञान प्राप्ति के अपने निरंतर प्रयास में, आपको व्यवस्थित और नियमित रूप से काम करना होगा। आपको प्रतिदिन अपने समय का कुछ भाग अध्ययन और प्रयोग में लगाना चाहिए। आपको नई पुस्तकों के शीर्षक एक डायरी में लिखने होंगे। आपको पुस्तक विक्रताओं से नई और पुराणी पुस्तकें ढूँढनी होगी। आपका अपना निजी पुस्तकालय होना चाहिए, भले ही वह छोटा ही क्यों न हो। उन पुस्तकों पर गर्व करें जो आपके घर की शोभा बन सकती है। आपके द्वारा खरीदी गई प्रत्येक पुस्तक अपने मानसिक विकास में अवश्य योगदान देती है। सार्वजनिक पुस्तकालयों और मित्रों से पुस्तकें उधार लें और उन्हें पढ़ना और समय पर लौटाना न भूलें। जो भी पढ़े उसका सार और सारांश लिखें, अन्यथा आपका अध्ययन ढलान वाली छत पर गिरती बारिश जैसा होगा। खूब दोहराव करें और अपनी स्मृति को प्रतिदिन ताज़ा रखे। आपका ज्ञान तथ्यों पर आधारित होना चाहिए। अपने अध्ययन कार्य की योजना कुछ समय पहले से ही बनाएँ, जैसे राजनेता अपने धार्मिक और सैन्य कार्यक्रमों की योजना पहले से बनाते हैं। अपनी आय का एक निश्चित भाग पुस्तकें और पत्रिकाएँ खरीदने के लिए अलग रखें और उसे 'पुस्तक' निधि कहें। इसका उपयोग किसी अन्य खर्च के लिए न करें। इस तरह किताबों पर खर्च करना आपके लिए आरामदायक हो जाएगा।

मानव जीवन छोटा है और जो ज्ञान के प्यासे हैं, उनके लिए बहुत छोटा है।

लाला हरदयाल

शिक्षकों के लिए विशेष

शिक्षा के बारे में क्या कहते हैं, सुखोमलिंस्की

-रवींद्र

सुखोमलिंस्की का जन्म सितंबर 1918 में यूक्रेन के पावलिश ज़िले में हुआ था। उनका बचपन कठिन परिस्थितियों में बीता। उनके पिता एक किसान थे। परिवार में अक्सर खाने की कमी रहती थी। 15 साल पढ़ाई करने के बाद, उन्होंने एक मेडिकल अर्दली के रूप में प्रशिक्षण लेना शुरू किया, लेकिन एक मुर्दाघर देखने के बाद, उन्होंने अपना इरादा बदल लिया और शिक्षण को अपना पेशा चुन लिया। उन्होंने 17 साल की उम्र में एक प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक के रूप में काम करना शुरू किया। जब द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हुआ, तो वे नाज़ियों के खिलाफ लड़ने के लिए लाल सेना में शामिल हो गए। उनकी 18 वर्षीय पत्नी, वेरा पोवशा, फासीवादी आक्रमणकारियों के कब्जे वाले क्षेत्र में गुरिल्लाओं की मदद कर रही थीं। उन्हें पकड़ लिया गया। जब वेरा नाज़ी जेल में थीं, तब उन्होंने एक बेटे को जन्म दिया। उनके बेटे को उनके सामने ही मार दिया गया। वो झुकीं नहीं और उसको भी फाँसी दे दी गई। यह त्रासदी सुखोमलिंस्की के जीवन का हिस्सा बन गई। सुखोमलिंस्की मास्को के पास मोर्चे पर थे। वहाँ वे घायल हो गए। गोले के छर्रे उनकी छाती में जीवन की आखिरी साँस तक रहे। यह वह समय था जब युद्ध के कारण स्कूल तबाह हो गए थे। शिक्षकों की कमी थी, किताबें नहीं थीं, कॉपियाँ नहीं थीं। युद्ध ने बच्चों से बचपन छीन लिया था। अनाथ बच्चों को संभालने वाला कोई न था। ऐसे समय में सुखोमलिंस्की ने बच्चों के साथ काम किया। उन्होंने उनकी समस्याओं को समझा।

सोवियत शिक्षक सुखोमलिंस्की, जिन्हें दुनिया भर में एक शिक्षा विशेषज्ञ के रूप में जाना जाता है, ने अपना पूरा जीवन बच्चों की शिक्षा के लिए समर्पित कर दिया। उन्होंने स्कूली शिक्षा, बच्चों की समस्याओं आदि पर लगभग 35 पुस्तकें और 500 लेख लिखे। उनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तकें हैं:

1. बच्चों को दिल दूं अपना
2. स्कूली बच्चे की आंतरिक दुनिया
3. स्कूली बच्चों में एक समान भावना का संचार, आदि।

सुखोमलिंस्की की पुस्तक ''शिक्षा के बारे में'' एक अनमोल खजाना है, जिसमें सुखोमलिंस्की के कई लेखों के चुनिंदा अंशों के साथ-साथ कई अप्रकाशित लेख भी शामिल हैं। इस पुस्तक की प्रस्तावना पत्रकार सोलोवीचक ने लिखी है, जिन्होंने कई वर्षों तक शैक्षिक समस्याओं पर काम किया। छह अध्यायों और उप-अध्यायों में विभाजित इस पुस्तक के कुछ मुख्य अंश इस प्रकार हैं :

''बच्चों में विश्वास और प्रेम महत्वपूर्ण हैं। यदि आप उनके शिक्षक बनना चाहते हैं, तो बच्चे को यह महसूस न होने दें कि वह दूसरों से घटिया है, अक्षम है या पिछड़ा है।''

''एक कमज़ोर छात्र एक पूरी तरह से बंद किताब है। शिक्षक का काम यह देखना है कि वह उस किताब को कैसे खोलता है और हर पन्ने को कैसे समझता है।''

''बच्चों के लिए पढ़ाई तभी रोमांचक और आकर्षक बन सकती है जब वह विचारों, भावनाओं, रचनात्मकता, सौंदर्य और खेलकूद की प्रज्वलित ज्योति से प्रकाशित हो। एक बच्चा वास्तविक बौद्धिक जीवन तभी जीता है जब वह खेल, संगीत, कल्पना और रचनात्मकता की दुनिया में रहता है। इसके बिना वह एक मुरझाए हुए फूल के सिवा कुछ नहीं है।''

''बच्चे को ज्ञान का भंडार और सख्त नियमों का गोदाम नहीं बनाना चाहिए। जर्मन गणितज्ञ फेलिक्स क्लेन के अनुसार, विद्यार्थी को ऐसी तोप नहीं बनाना चाहिए जिसे दस साल तक ज्ञान के गोला-बारूद से भरा जाए और फिर दागा जाए, जिसके बाद कुछ भी शेष नहीं बचता।''

''एक सही और सच्चा विद्यालय सक्रिय विचारों से भरपूर होता है।'' शिक्षक का काम विद्यार्थी में यह भावना जगाना है कि अध्ययन समाज के लिए एक आवश्यक और उपयोगी गतिविधि है।''

''बचपन में, जब एक बच्चा महसूस करता है कि टूटे

पहियों वाली एक खिलौना कार घायल पक्षी की तरह पीड़ा महसूस करती है, तो यह अनुभव दयालुता और काव्यात्मक कल्पना की नींव है।''

''विद्यालयों को दुनिया को समझने में मदद करनी चाहिए, न कि दीवारें बनकर बच्चे और दुनिया के बीच खड़े होना चाहिए। बच्चों के बचपन को पुनर्स्थापित करें। एक कमरे की चारदीवारी के भीतर नहीं, बल्कि एक खुले बगीचे में कक्षा लगाएँ।''

''बच्चे में जो अच्छा है उसे प्रोत्साहित करके सुंदर बनाया जा सकता है। विद्यार्थी दृढ़ निश्चयी लोगों से प्रेम और उनका सम्मान करते हैं। वे कमज़ोर और हीन लोगों को पसंद नहीं करते। जब कोई शिक्षक केवल पढ़ाने के लिए बिना रुचि के पढ़ाता है, तो बच्चे ऐसी शिक्षा के प्रति कभी प्रतिबद्ध नहीं रहते। शिक्षक के दिखावे के कारण, विद्यार्थी भी पाखंडी और धोखेबाज़ बन जाते हैं। बच्चों के बहाने, लापरवाही तीव्र आक्रोश की अभिव्यक्ति हैं। उस समय वे पीड़ा से गुज़र रहे होते हैं, शिक्षा में आने वाली कठिनाइयों को दूर नहीं कर पाते और शिक्षा से दूर हो जाते हैं।

ऐसे बच्चे जब बड़े होते हैं, तो स्वभाव से कठोर और चिड़चिड़े हो जाते हैं। ऐसे समय में, शिक्षक को बच्चे को कठिनाइयों को दूर करने और खुशी पाने का तरीका सिखाना होगा।''

''हम स्कूल की दीवारों को बच्चों से बात करने के लिए तैयार कर सकते हैं। दीवारों पर लटकी तस्वीरें बच्चों को सोचने पर मजबूर करती हैं।आस-पास का वातावरण, बगीचे, प्रकृति की गोद को स्वीकार करना, उसकी सेवा करना, ये सब बच्चे के मन पर गहरी छाप छोड़ते हैं।''

''नि:संदेह, ऐसा कोई बच्चा नहीं है जो अपनी स्कूली शिक्षा से सीखना न चाहे। काम करने में असमर्थता अनिच्छा को जन्म देती है, और अनिच्छा आलस्य को जन्म देती है।''

''काम से मिलने वाले आनंद की तुलना किसी अन्य प्रकार की खुशी से नहीं की जा सकती। जब कोई बच्चा अपने मन का एक छोटा सा हिस्सा भी दूसरों के काम में लगाता है, तो उसे काम में आनंद मिलता है। वह कभी भी कठोर, अभिमानी व्यक्ति नहीं बनेगा।''

''बच्चों के मन की मिट्टी को सावधानी से जोतो। उसमें सुंदरता के बीज बोओ। वह सुंदरता मातृभूमि की, प्रकृति की, पेड़ों की, मधुमक्खियों की, टमाटरों की लालिमा की, मनुष्य की अच्छाई की है। यह जीवन को एक आनंद के रूप में पूरी तरह से सराहना सिखाती है।

... बच्चों में समूह के प्रति ज़िम्मेदारी शब्दों से नहीं, बल्कि अच्छे कार्यों से पैदा करें। एक बच्चा के लिए जितना ज़्यादा कार्य करेगा, उतना ही बच्चे में समूह के प्रति सम्मान की भावना मज़बूत होगी। वह अपने साथियों के साथ अपने जुड़ाव और उनके प्रति ज़िम्मेदारी को उतनी ही गहराई से महसूस करेगा।

83601 88264

*****

नरेन्द्र कपूर के शिक्षा संबंधी विचार

शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो बच्चों को वास्तविक जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करे। वह किताबी ज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक शिक्षा और जीवन कौशल पर भी ज़ोर देते हैं। वह चाहते हैं कि बच्चे सिर्फ़ पाठ्यक्रम तक सीमित न रहें, बल्कि अपने आसपास की दुनिया को समझें और उसमें अपनी भूमिका निभाएँ।उनके अनुसार, आज की शिक्षा प्रणाली रटने को बढ़ावा देती है, जो रचनात्मकता के लिए हानिकारक है। वह इस बात पर ज़ोर देते हैं कि बच्चों को प्रश्न पूछने, तर्क करने और नए विचार उत्पन्न करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। कपूर का मानना है कि एक अच्छी शिक्षा प्रणाली बच्चों की रचनात्मक और आलोचनात्मक सोच की क्षमता को बढ़ाती है। शिक्षा केवल शैक्षणिक उपलब्धियों तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि बच्चों में ईमानदारी, करुणा, सहयोग और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे नैतिक मूल्यों का भी संचार होना चाहिए। उनका मानना है कि मूल्यों के बिना शिक्षा अधूरी है और समाज के लिए लाभकारी नहीं हो सकती।

जीवन जीने का सही मार्ग

–अजायब जलालाना

रमन के मायके और ससुराल वाले दोनों परिवार ही बहुत अधिक धार्मिक विचारों वाले थे। वो बी.ए. पास थी। उसकी शादी को लगभग 6 साल हो चुके थे। उसकी दो बेटियाँ थी। उसे ससुराल और पति से भरपूर प्यार मिलता था। कहीं आने-जाने और खर्चे-पैसे की कोई दिक्तत नहीं थी।

समस्या :- इन सभी सहूलतों के बावजूद वो पिछले 7-8 महीनों से मानसिक तनाव की शिकार थी। उसे बाल खुले रखने पड़ते थे, क्योंकि चोटी बाँधने पर उसके सिर में तेज़ दर्द शुरू हो जाता था। वह बार-बार रोती, दौरे पड़ते , हाथ-पैर मुड़ने लगते, बेहोशी आ जाती, दांत भींचने लगती और कई मिनटों तक होश-हवास खो बैठती थी।

परिवार की उसको स्वस्थ करने की कोशिश :- ऐसे हालात में उसे डॉक्टर के पास ले जाया गया। सीटी स्कैन समेत तमाम टेस्ट करवाए गए, लेकिन कोई बीमारी नहीं मिली। अंततः दवा और थोड़ी बहुत काउंसलिंग के बाद डॉक्टरों ने उसे घर भेज दिया। अब वो दिन में भी ज़्यादातर सोती रहती थी, जागने पर फिर रोती या दौरे पड़ते –यानी वही समस्या। उसके घरवाले उसे धार्मिक स्थलों पर माथा टेकने ले जाते रहे, पर उसकी मन की उलझनों को कोई नहीं समझ पाया। अगर किसी को कुछ समझ भी आया, तो स्थायी हल नहीं निकाल पाया।

भले ही वह किसी बाबे या पाखंडी के चक्कर में नहीं पड़ी, सिर्फ अपने धार्मिक विश्वास पर टिकी रही, लेकिन उसकी समस्या जस की तस बनी रही। अब वह मायके में रह रही थी, जहाँ उसे ज़बरदस्ती पाठ-पूजा के लिए कहा जाता था, जबकि अब उसका इससे भी मन ऊब चुका था। हाँ, वह अब भी धार्मिक वैराग्यमयी गीत-संगीत ज़रूर सुनती थी, इसके अलावा उसे कुछ अच्छा नहीं लगता था।

मानसिक परेशानी का कारण :- आखिर में किसी समझदार व्यक्ति के कहने पर,रमन का परिवार उसे लेकर कालांवाली तर्कशील मानसिक परामर्श केंद्र पर समस्या के समाधान के लिए पहुँचा। जब तर्कशील सोसाइटी के सदस्यों ने उसे विश्वास में लेकर मनोविज्ञानिक पहलुओं पर बात की गई, तो उसने विस्तार से अपने मन की उलझनों को खोलना शुरू किया

''हम दो देवरानी, जेठानी हैं, मेरे जेठ की शादी पहले हो गई थी। लेकिन उन्हें कोई संतान नहीं हुई। हमारे यहाँ पहले लड़की हुई और फिर दूसरी बार भी लड़की ही हुई। मेरी सास ने मेरी दूसरी बेटी को जेठानी की झोली में डाल दिया। मेरी जेठानी ने ही इस छोटी को पाला-पोसा और बहुत प्यार दिया। मगर अचानक 8-9 महीने पहले मेरी जेठानी ने इस छोटी बेटी को पालना छोड़ दिया। वह डॉक्टर के पास दवा लेने जाती तो इस बच्ची को घर पर ही छोड़ जाती। बच्ची सारा दिन रोती रहती, गंदे कपड़ों और मिट्टी में लिपटी रहती। अब यह बच्ची डेढ़ साल की है, इसका बचपन रुल गया, इसकी आदतें ख़राब हो गईं। इसकी ज़िम्मेदार मैं हूँ'' –कहते हुए वह भावुक हो गई–''मैं पिछले डेढ़ साल के प्यार की भरपाई कैसे करूँ? यह कोई गुड़िया-गुड्डे का खेल नहीं है कि जब मन किया, किसी की झोली में डाल दो और वह उसका ख्याल ही न रखे...''

अब पूरी बात स्पष्ट हो चुकी थी। क्योंकि जेठानी अब आई वी ऐफ तकनीक से दो बेटों की माँ बनने वाली थी और गर्भवती थी। सास भी कहती, ''तू चुप कर, एक बेटा तुझे दे देंगे और तेरी बेटी वहीं उनके पास रहेगी।''

''बताओ, अब मैं क्या करूँ? मैं अपनी इन दोनों बेटियों को बेटों के समान पालूँगी। मुझे लड़का-लड़की में कोई फर्क नहीं लगता। मेरी सास मेरे मम्मी-पापा पर भी दबाव बना रही है कि वो मुझे समझाएँ...'' ''दिन-रात मुझे अपनी छोटी बेटी की चिंता रहती है, उसे देखकर मैं रोती रहती हूँ...''

ऐसे उसने अपनी भावनाएँ हमारे साथ साझा कीं। वह आत्मविश्वास खो चुकी थी। कभी-कभी उसे आत्महत्या तक के विचार आते। पहले उसकी अपनी जेठानी से बहुत अच्छी बनती थी, अब वह उसे धोखेबाज़ लगती थी, क्योंकि उसने उसके साथ बात करना भी बंद कर दिया था।

समाधान की ओर :- हमारी टीम ने उसे झूठी कल्पनाओं को छोड़ वास्तविक जीवन जीने के ढंग के बारे में समझाया गया। उसे सच्चाई से सीधे टकराने, फालतू की दवाओं पर

निर्भरता छोड़ने और अंतर्मुखता त्याग कर अपने फैसले को अटल मानते हुए परिवार के सामने स्पष्ट रूप से रखने को प्रेरित किया गया। किसी के दबाव में आने की बजाय, अपनी बात साफ़ तरीके से रखना, अपनी आदतें बदलना, अकेले न रहना और घबराहट की स्थिति में ज़्यादा ऑक्सीजन और खुली हवा में जाना जैसी विधियों को अपनाने की सलाह दी गई।

रमन हमारी बातों को बहुत ध्यान से सुन रही थी– क्योंकि वह पढ़ी-लिखी और समझदार थी। हमें पूरा यक़ीन था कि इन बातों का उस पर असर ज़रूर पड़ेगा।

हमने परिवार के बाकी सभी सदस्यों से बात की और रमन को पूरी तरह ठीक करने के लिए उनके सहयोग की मांग की। सभी ने हमें संपूर्ण सहयोग का भरोसा दिया, कुछ दिन बाद रमन का हमें फोन आया कि वह अब बिल्कुल ठीक है और अपने ससुराल में खुशी-खुशी रह रही है...

9416724331

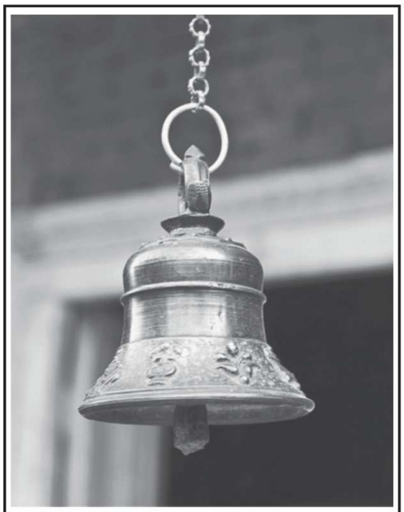
लघु कथा

घंटा

–कुलदीप सिरसा

एक देश में अनेकों समस्याएँ थीं। गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, अंधविश्वास, दंगे, जातिवाद, आदि। कोई भी राजा इन समस्याओं का समाधान नहीं कर पा रहा था।

तभी अचानक एक महापुरुष, एक युगपुरुष, एक देवता, महाराजा राजा झाँसा दास उस देश के राजा बने। राजा बनते ही उन्होंने घोषणा की कि वे 10 वर्षों के भीतर सभी समस्याओं का समाधान कर देंगे। उन्होंने घोषणा की कि वे अपने राज्य में एक विशाल 'घंटा' स्थापित करवाएँगे। उस 'घंटे' को लगाने से राज्य की सभी समस्याएँ हल हो जाएँगी। राजा ने देखा कि कुछ लोग विश्वास नहीं कर रहे हैं, इसलिए राजा ने अगली घोषणा की कि यदि 'घंटा' स्थापित करवाने के बाद भी राज्य की समस्याएँ हल नहीं हुईं, तो वे राजधानी के चौक में फाँसी लगा लेंगे। राजा की यह घोषणा सुनकर सभी को उनकी बात पर यकीन हो गया। तुरंत 'घंटा' बनाने की प्रक्रिया शुरू कर दी गई। राज दरबारी, कर्मचारी, धर्मगुरु और राजा को पसंद करने वाले लोग उस पवित्र दिन का बहुत तीव्रता से इंतज़ार करने लगे। जब राजा भी एक-एक हफ़्ते या दस दिन बाद प्रजा के सामने प्रकट होकर 'घंटे' के काम की जानकारी देते, तो प्रजा खुशी से उछल पड़ती। पूरे राज्य में बस 'घंटा-घंटा' की ही चर्चा होती।



दस वर्षों के लंबे अंतराल के बाद, आखिरकार 'घंटा' के उद्घाटन का दिन तय हुआ। हर कोई एक-दूसरे को बधाई दे रहा था। बेशक, उद्घाटन के दिन के बारे में सभी जानते थे, लेकिन फिर भी लोग घर-घर जाकर एक-दूसरे को निमंत्रण पत्र दे रहे थे।

अंततः अवतार-पुरुष, महापुरुष, पवित्रात्मा, युग-पुरुष, देव-पुरुष, महाराजाओं के महाराजा झंसा दास ने 'घंटे' का उद्घाटन किया। जब लोगों ने 'घंटे' की ध्वनि सुनी, तो लोगों को ऐसा लगा जैसे उनकी सदियों पुरानी इच्छा पूरी हो गई हो, कोई अधूरा सपना पूरा हो गया हो। लोग खुशी-खुशी कल्पना में स्वर्ग में सैर करने लगे। वे अपनी भूख-प्यास भूल गए। वे अपने सारे दुःख भूल गए। महाराजा झाँसा दास के नारों से आकाश गूँज उठा। तब मंत्री, संतरी, दरबारी, पुरोहित 'घंटा' बजाकर अपनी खुशी का इजहार करते थे। उसके बाद तो पूरे देश को 'घंटा' बजाने की आदत पड़ गई। अब देश में गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, अंधविश्वास, दंगे, जातिवाद आदि की कोई आवाज सुनाई नहीं देती थी। अब हर जगह केवल 'घंटे' की 'टन-टन' ही सुनाई देती थी।

महान शहीद, सराभा

(शहीदी दिवसः 16 नवंबर 1915)



यह अनुकरणीय जीवन विचारों को एक नई राह देता है। इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर चाँद की तरह चमकते, एक युवा, ग़दरी देशभक्तों की संतान करतार सिंह सराभा। देशभक्ति की भावना छोटी उम्र में ही जागृत हो गई थी। उन्होंने देश सेवा को अपना जीवन आदर्श बना लिया। विचारों और सपनों ने एक उज्ज्वल तरंग ली। ''ग़दर'' अखबार दरवाज़े पर दस्तक देने लगा। उन्होंने इस उद्देश्य के लिए पूरी निष्ठा से काम किया। छोटी सी उम्र में ही उन्होंने फाँसी के फंदे को चूम लिया और अपना जीवन देश के लिए समर्पित कर दिया। देश और दुनिया उस वीर की प्रतिबद्धता और बलिदान के आगे नतमस्तक होती है। यही तो जीवन है, जो उच्च आदर्शों के लिए समर्पित हो। जीते जी एक उज्ज्वल उदाहरण बनो।

16 नवंबर 1915 को, साढ़े उन्नीस वर्षीय युवक करतार सिंह सराभा को ब्रिटिश सरकार ने लाहौर जेल में छह अन्य साथियों के साथ फाँसी पर लटका दिया था।

बाबा सोहन सिंह भकना के संस्मरणों में एक ज़िक्र आता है जब सराभा ने जेल की दीवार पर लिखा था, ''शहीद का खून व्यर्थ नहीं जाता। वह अंततः रंग लाएगा।'' बाबा भकना ने कहा, ''करतार सिंह, यहाँ जेल में तो हड्डियाँ भी खत्म हो जाती हैं, बाहर कैसे ख़बर फैलेगी और शहीदों का खून फिर कैसे रंग लाएगा?'' सराभा का जवाब था, ''हुज़ूर, आज नहीं तो कल या परसों बाहर जा कर खून ज़रूर रंग लाएगा।'' –**डॉ. चमन लालो**

गुलदस्ता

ज़िंदगी के कई रंग हैं। हर रंग का अपना असर होता है। जैसे गुलदस्ते में अलग-अलग फूलों के रंग उसकी पहचान बन जाते हैं। वैसे ही प्रेम, सहयोग और एकता जीवन का वो गुलदस्ता है जिसमें रिश्तों की पवित्रता है। लक्ष्यों को पाने की ताकत है। अधिकारों और हितों के लिए संघर्ष की रोशनी है। सफलता का मार्ग है।

दृष्टिकोण के रंग

जीवन की राहों पर चलते हुए, हमारे सामने कई काम आते हैं, कुछ छोटे, कुछ बड़े, कुछ आसान, कुछ मुश्किल, लेकिन जब हम किसी भी काम को ''बोझ'' समझने लगते हैं, तो हमारी मानसिक थकान, चरित्र, व्यवहार, कार्यक्षमता और विश्वसनीयता में गिरावट आने लगती है। जो लोग काम को शिकायत, मजबूरी, आलस्य, दबाव, कड़वाहट और बोझ की नज़र से देखते हैं, वे अपनी आत्मिक शांति खो देते हैं, क्योंकि समस्या काम से नहीं, बल्कि उन लोगों से है जो काम को बोझ समझते हैं, जो भीतर से टूटते हैं, बिखरते हैं, बिखरते हैं और बार-बार मरते हैं।

काम का बोझ वह नहीं है जो शरीर उठा रहा है; बोझ वह है जो मन उठा रहा है।

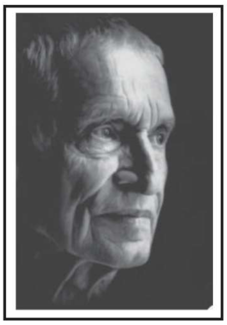
जब हम अपने कामों को आनंद, समझ और ज़िम्मेदारी के साथ करते हैं, तो वही काम रोचक बन जाता है।

आखिरी बात :- दरअसल, समस्या काम में नहीं, बल्कि उसे करने या न करने के नज़रिए में है।

–श्रीराम सैयदवाला

शोध, इच्छा और शिक्षा

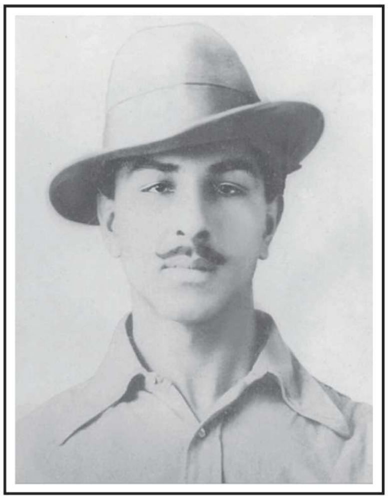
खोज और इच्छा की भूख बढ़ानी चाहिए। तभी विज्ञान और सृजन में रुचि पैदा होगी। खोज और उसकी व्याकुलता, इसमें अपार आनंद है। काम करना और कुछ करना सिखाना। सुभाव में स्थिरता पैदा करना। सपने इस तरह साकार हो सकते हैं। थकान और आराम से मुक्ति मिलेगी। यह भी कला है... किताबें, रंगमंच और संगीत और लोगों से मिलना-जुलना। दुनिया में अच्छे और बुद्धिमान लोग हैं। आपमें उन्हें ढूँढ़ने की क्षमता होनी चाहिए। ऐसे लोगों से बात करने से बहुत खुशी मिलती है। चीज़ों के लिए बहुत ज़्यादा लालची नहीं होना चाहिए। खैर, हो सकता है सिखाना संभव हो। मैं सिखाने की कोशिश करता हूँ।



निकोलाई अमोसोव

(रूसी वैज्ञानिक और प्रोफ़ेसर)

सदैव ही न्याय और इन्साफ के है साथ बनें रहना साथी –महेंदर साथी



भगत सिंह कहते थे, ''बहरे कानों तक अपनी आवाज़ पहुँचाने के लिए अक्सर धमाकों की ज़रूरत पड़ती है।''

लेकिन उनको कहाँ पता था कि लोगों की स्मृति इतनी कमज़ोर है कि उनके जाने के बाद वे सिर्फ़ उनका 'धमाका' ही याद रखेंगे। और उनको भूल जाएँगे, उनके संघर्ष को भूल जाएँगे। आज हम भगत सिंह के जीवन के कुछ तथ्य आपके लिए लाए हैं इन सारी घटनाओं के साथ, उस वक्त पर उनकी उम्र पर भी ध्यान दें। और विचार करें कि उस उम्र में आपका जीवन कैसा था।

28 सितंबर 1907 को बंगा (पाकिस्तान) में जन्म हुआ।

– 10 की उम्र में कक्षा 9 तक पढ़ाई पूरी की।

– 12 की उम्र में जलियाँवाला बाग के कांड ने उन्हें अन्दर तक झंझोड़ कर रख दिया।

– 14 की उम्र में नेशनल कॉलेज, लाहौर गए। पहली बार किसी छात्र को 10वीं किए बिना, प्रतिभा के दम पर कॉलेज में एडमिशन मिला।

– 16 की उम्र में इंटरमीडिएट की परीक्षा पास की।

– 16 की उम्र में शादी के लिए दबाव के चलते घर से भागकर कानपुर चले गए।

– 16 की उम्र में 'प्रताप' नाम की पत्रिका में लेखन का काम मिला। साथ ही अलीगढ़ के एक स्कूल में हेडमास्टर की नौकरी मिली।

– 19 की उम्र में गरिबाल्डी व मज़ीनी की संस्था 'Young Italy' से प्रेरित होकर 'नौजवान भारत सभा' नाम की संस्था शुरू की।

– 20 की उम्र में कीर्ति, अकाली, महारथी, प्रभा व चाँद जैसी पत्रिकाओं के लिए क्रांतिकारी लेख लिखे।

– 21 की उम्र में लाला लाजपत राय जी की हत्या का बदला लिया। लाहौर से वेश बदलकर निकल गए।

– 21 की उम्र में 'सेंट्रल असेम्ब्ली' (आज का संसद भवन) में बम व अपने मिशन से जुड़े पैम्फलेट फेंके।

– 22 की उम्र में राजनीतिक कैदियों के हितों के लिए 112 दिनों की भूख हड़ताल पर बैठे।

– 23 की उम्र में 23 मार्च 1931 को (अंग्रेज़ी सरकार ने फाँसी पर चढ़ा दिया।

विलक्षण प्रतिभा के धनी थे : 5 भाषाएँ जानते थे, कॉलेज के दिनों से ही अभिनय में रुचि रखते थे, उनके द्वारा लिखे गए 100+ लेख पत्रिकाओं व अख़बारों में प्रकाशित हुए, मृत्युदण्ड मिलने पर बिना कोई अपील दायर किए फाँसी पर चढ़ गए।

कुछ ऐसे थे हमारे भगत सिंह। लेकिन आज हम उन्हें कैसे याद करते हैं?

आज हम उनके जीवन के किन पहलुओं का उत्सव मनाते हैं?

आज भी उनके नाम लेने भर से हमारी धड़कने तेज़ हो जाती हैं। पर हमारे भीतर भगत सिंह जैसी सत्यनिष्ठा और निडरता जगाने वाले कितने तत्त्व हैं हमारे जीवन में ?

जीवन की गहराइयों में अक्सर हम ऐसे प्रश्नों का सामना करते हैं जो हमें अपने अस्तित्व और उद्देश्य के बारे में सोचने पर मजबूर करते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर ढूंढने में समय लगता है, लेकिन यही खोज हमें जीवन के अर्थ को समझने के करीब ले जाती है।

– बूटा सिंह वाकफ

शंका निवारण

1. नींद और मृत्यु में क्या अंतर है ?

– नींद और मृत्यु में ज़मीन–आसमान का अंतर है। बस इतनी समानता है कि नींद के कारण व्यक्ति का आस–पास के वातावरण से कुछ समय के लिए अस्थायी रूप से संबंध टूट जाता है। लेकिन मृत्यु के साथ यह संबंध हमेशा के लिए टूट जाता है। नींद में कई प्रक्रियाएँ होती हैं, जो चलती रहती हैं। जैसे साँस लेना, सपने लेना, पाचन, रक्त संचार आदि, लेकिन मृत्यु के पाँच मिनट बाद शरीर में ये प्रक्रियाएँ रुक जाती हैं।

2. साधना क्या है ?

– साधना एक ऐसा शब्द है जिसका प्रयोग धार्मिक लोग बहुत करते हैं। यहाँ उनका मतलब केवल ईश्वर की आराधना और भक्ति से होता है। लेकिन हम समझते हैं कि साधना मानवीय संघर्ष का दूसरा नाम है। जैसे एक बच्चा पहले लेटना सीखता है, उसके बाद वह लेटे–लेटे सरकना सीखता है। धीरे–धीरे वह बैठना सीखता है। फिर वह रेंगना, खड़ा होना, चलना सीखता है। इसी प्रकार, जब कोई बच्चा पहली बार एक–दो शब्द बोलता है, तो माता–पिता बहुत खुश होते हैं। उसके बाद, वह वाक्य बनाना सीखता है और धीरे–धीरे बोलना सीखता है। ये सभी गतिविधियाँ साधना का एक हिस्सा हैं। यदि हमारा समाज साधना का अर्थ समझ ले, तो हम अच्छे इंसान पैदा करने की दिशा में भी आगे बढ़ सकते हैं। मनुष्य के अच्छे गुण साधना से ही जन्म लेते हैं और उन्हें जीवन में ढालना होता है।

3. क्या नकारात्मक (Negative Energy) ऊर्जा होती है ?

– मैंने कई पढ़े–लिखे लोगों को नकारात्मक ऊर्जा के बारे में बात करते सुना है। अगर उनसे पूछा जाए कि ऊर्जा और पदार्थ में क्या संबंध है, तो वे कहेंगे कि ऊर्जा और पदार्थ एक ही चीज़ हैं। पदार्थ ऊर्जा से बन सकता है और पदार्थ को ऊर्जा में बदला जा सकता है। अब जब पदार्थ की परिभाषा पूछी जाती है, तो वे कहते हैं कि यह वह चीज़ है जो जगह घेरती है, जिसका भार और आकार होता है। तो क्या पदार्थ नकारात्मक हो सकता है, इस पर वे कहेंगे नहीं। अगर पदार्थ स्वयं नकारात्मक नहीं हो सकता, तो ऊर्जा नकारात्मक कैसे हो सकती है? तो नकारात्मक ऊर्जा का स्रोत ज्योतिषी आदि ही छोड़ जाते हैं जो लोगों को भ्रमित करने के लिए समाज में नकारात्मकता फैलाते हैं।



4. क्या खड़े होकर पानी पीने से घुटनों में दर्द की बीमारी हो जाती है ?

– इंटरनेट मीडिया ने जहाँ हमें पूरी दुनिया के ज्ञान से जोड़ा है, वहीं यह भ्रम / गलतफहमी / अफवाहें फैलाने का ज़रिया भी बन रहा है क्योंकि बिना किसी विशेषज्ञता वाला एक अज्ञानी व्यक्ति भी अपना ज्ञान लोगों तक पहुँचाने की कोशिश कर रहा है। दरअसल, हम जो कुछ भी खाते–पीते हैं, वह सबसे पहले पेट में जाता है जहाँ पाचक रसों की उपस्थिति से पाचन की प्रक्रिया शुरू होती है। इसके बाद यह सब 'डुओडेनम' से होकर यकृत रसों के साथ मिलकर छोटी आंत में जाता है।यहाँ, भोजन का अंतिम पाचन पूरा होने के बाद, ये पचे हुए भाग रक्त द्वारा अवशोषित कर लिए जाते हैं और हृदय द्वारा शरीर के सभी अंगों को उपयोग के लिए भेज दिए जाते हैं। शरीर के अंग अपनी ज़रूरत के हिसाब से इनमें से पानी और भोजन के अंशों का उपयोग करते हैं। फिर, बचे हुए घुलनशील पदार्थ और अतिरिक्त पानी को रक्त द्वारा शुद्धिकरण के लिए गुर्दों में ले जाया जाता है। इसलिए सारा पानी घुटनों तक नहीं पहुँच पाता क्योंकि ऐसा माना जाता है कि खड़े होकर पानी पीने से यह सारा पानी सीधे घुटनों तक पहुँचता है और जमा होकर दर्द पैदा करने लगता है। यकीनन, सभी जानवर (मनुष्यों को छोड़कर) केवल खड़े होकर ही पानी पी सकते हैं, बैठकर नहीं, फिर तो वे घुटनों की बीमारी के कारण हिल–डुल ही नहीं पाते।

***

भारत में जातिगत पूर्वाग्रह : हालिया घटनाओं के संदर्भ में संक्षिप्त विश्लेषण।

–कृष्ण कायत

भारत के वर्तमान सामाजिक परिदृश्य में जातिवाद का चेहरा पुनः एक बार विकृत रूप में हमारे सामने उभर कर आया है। यह वह दौर है जब देश विकास, समानता और संविधान की मर्यादा की बातें कर रहा है, परन्तु समाज के भीतर गहरी पैठ जमाए जातिगत पूर्वाग्रह बार-बार यह स्मरण करा रहे हैं कि सामाजिक चेतना और संवैधानिक आदर्शों के बीच अब भी एक लम्बी दूरी बनी हुई है। हाल की कुछ घटनाएँ–जिनमें वरिष्ठ वकील अनिल मिश्रा द्वारा संविधान निर्माता बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर के प्रति अपमानजनक टिप्पणी करना, सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति बी.आर. गवई पर जूता फेंकने का प्रयास और हरियाणा के वरिष्ठ आईपीएस अधिकारी वाई. पूरन कुमार द्वारा आत्महत्या कर अपने सुसाइड नोट में जातिगत भेदभाव के आरोप लगाना–इन सबने मिलकर यह स्पष्ट कर दिया है कि भारतीय समाज में जाति का दंश अब भी न केवल जीवित है, बल्कि उसने नए रूपों में संस्थागत ढाँचे तक को अपनी गिरफ्त में ले लिया है।

डॉ. अंबेडकर पर की गई अपमानजनक टिप्पणी केवल किसी व्यक्ति विशेष पर आक्षेप नहीं थी, बल्कि वह भारत के संवैधानिक मूल्यों, समानता के विचार और सामाजिक न्याय की भावना पर आघात था। यह दुखद है कि एक वरिष्ठ अधिवक्ता जैसे शिक्षित व्यक्ति से ऐसी असंवेदनशीलता प्रकट हुई। इससे यह संकेत मिलता है कि शिक्षित वर्ग भी जातिगत अहंकार और पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं हो पाया है। इस प्रकरण में उत्पन्न सामाजिक आक्रोश केवल अंबेडकरवादी विचारधारा की रक्षा का प्रतीक नहीं, बल्कि यह संविधान और उसकी आत्मा के प्रति सम्मान की स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। अंबेडकर वह व्यक्ति थे जिन्होंने सदियों से वंचित, शोषित और अपमानित वर्ग को आत्म-सम्मान और अधिकारों की भाषा दी। उन पर की गई टिप्पणी केवल एक व्यक्ति की निंदा नहीं, बल्कि उस आंदोलन का अपमान थी जिसने भारत को लोकतांत्रिक चेतना प्रदान की।

दूसरी ओर, सर्वोच्च न्यायालय में एक वकील द्वारा मुख्य न्यायाधीश पर जूता फेंकने का प्रयास एक और गंभीर संकेत है। यह केवल व्यक्तिगत असहमति का प्रदर्शन नहीं था; यह न्यायिक संस्थान, उसकी गरिमा और संविधान की आत्मा पर हमला था। जब न्यायालय की सर्वोच्च पीठ, जो नागरिकों के अधिकारों की रक्षा का प्रतीक है, वहां भी इस प्रकार की असंवेदनशीलता और हिंसक प्रतिक्रिया सामने आए, तो यह दर्शाता है कि समाज के एक हिस्से में गहरी असहिष्णुता और वैचारिक कट्टरता घर कर चुकी है। दुखद यह है कि इस असंवेदनशीलता को कुछ समूहों ने ''विचार स्वतंत्रता'' के नाम पर समर्थन भी दिया, जिससे स्पष्ट हुआ कि जातिवादी मानसिकता अब केवल गली-मोहल्लों में नहीं, बल्कि शिक्षा, पेशे और न्याय जैसी संस्थाओं में भी गहराई से व्याप्त है।

हरियाणा के वरिष्ठ पुलिस अधिकारी वाई. पूरन कुमार की आत्महत्या ने इस विषय को एक और गहराई दी है। उन्होंने अपने आत्महत्या नोट में अपने वरिष्ठ अधिकारियों पर जातिगत भेदभाव और मानसिक उत्पीड़न का आरोप लगाया। एक उच्च पद पर आसीन अधिकारी यदि अपनी जाति के कारण अपमान, उपेक्षा या भेदभाव का अनुभव करता है, तो यह केवल व्यक्तिगत त्रासदी नहीं बल्कि प्रशासनिक ढांचे की विफलता का प्रमाण है। यह घटना इस बात की गवाही देती है कि जातिगत असमानता केवल सामाजिक संबंधों में नहीं, बल्कि शासन-प्रशासन और कार्यस्थल की परतों में भी गहरी जड़ें जमाए हुए है। यह अत्यंत चिंताजनक स्थिति है, क्योंकि जब शासन का प्रहरी स्वयं अपने ही सिस्टम से न्याय नहीं पा रहा, तब सामान्य नागरिकों के लिए न्याय की कल्पना कितनी कठिन हो सकती है।

इन तीनों घटनाओं को जोड़कर देखें तो यह स्पष्ट होता है कि भारत में जातिवाद अब केवल सामाजिक परंपराओं की बात नहीं रह गया, बल्कि उसने आधुनिकता, शिक्षा और संस्थागत संरचनाओं में भी अपने रूपांतरण का मार्ग खोज लिया है। यह एक प्रकार का ''संस्थागत जातिवाद'' है जो दिखने में कानूनी और पेशेवर दायरों में कार्य करता है, परंतु भीतर से पुराने मनुवादी संस्कारों को जीवित रखे हुए है। सामाजिक न्याय के लिए बनाए गए कानून, जैसे कि अनुसूचित जाति-जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम, अक्सर कागज़ों में सशक्त दिखते हैं, परन्तु उनके प्रभावी क्रियान्वयन में संवेदनशीलता और साहस दोनों की कमी दिखाई देती है।

आज सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि समाज अपने भीतर झाँके। संवैधानिक मूल्य केवल विद्यालयों की पाठ्यपुस्तकों में पढ़ाए जाने वाले विषय नहीं हैं, बल्कि उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में आत्मसात करना आवश्यक है। यह केवल कानून का मामला नहीं, बल्कि चेतना का प्रश्न है। जब तक शिक्षित वर्ग और संस्थागत ढाँचे स्वयं आत्म-निरीक्षण नहीं करेंगे, तब तक समानता का सपना अधूरा रहेगा। हमें यह

समझना होगा कि जाति आधारित श्रेष्ठता का भ्रम वास्तव में सामाजिक दुर्बलता का ही प्रतीक है।

इन घटनाओं ने भारत के विवेकशील समाज के सामने एक चुनौती रख दी है–क्या हम संविधान के मूल सिद्धांतों की रक्षा केवल भाषणों में करेंगे या उन्हें अपने व्यवहार में भी उतारेंगे? बाबा साहेब अंबेडकर ने कहा था कि ''राजनीतिक समानता तभी सार्थक होगी जब सामाजिक और आर्थिक समानता स्थापित हो।'' आज जब अंबेडकर के नाम पर राजनीति होती है, उनकी मूर्तियाँ लगाई जाती हैं, तब यह और अधिक आवश्यक हो जाता है कि हम उनके विचारों की आत्मा को समझें–और वह आत्मा केवल एक ही बात कहती है- समानता, आत्म–सम्मान और न्याय ही सभ्यता का मापदंड हैं।

उपरोक्त घटनाक्रम हमें यह सोचने पर विवश करता है कि यदि एक वरिष्ठ वकील संविधान के निर्माता का अपमान कर सकता है, एक न्यायालय में हिंसक विरोध हो सकता है, और एक उच्च पुलिस अधिकारी भेदभाव के कारण अपनी जान गंवा सकता है–तो हमें यह मान लेना चाहिए कि सामाजिक सुधार का कार्य अभी अधूरा है। यह केवल कानून से नहीं होगा; इसके लिए समाज के हर व्यक्ति को अपनी चेतना के स्तर पर परिवर्तन लाना होगा।

भारत को सच्चे अर्थों में आधुनिक और समानतामूलक समाज बनाने के लिए आवश्यक है कि हम अंबेडकर की दृष्टि को केवल इतिहास के पन्नों में नहीं, बल्कि वर्तमान के जीवन में उतारें। संवैधानिक आदर्शों की रक्षा केवल अदालतों में नहीं, बल्कि हमारे मनोभावों में होनी चाहिए। जब तक यह परिवर्तन नहीं होगा, तब तक जातिवाद का यह घिनौना चेहरा बार–बार हमारे समाज को अपनी गिरफ्त में लेता रहेगा।

भारत को इस संकट से उबरने के लिए केवल कानून नहीं, बल्कि संवेदना की राजनीति की आवश्यकता है। यह आवश्यक है कि शिक्षा, न्यायपालिका, और प्रशासन में जाति–संवेदनशील प्रशिक्षण अनिवार्य किया जाए। साथ ही, मीडिया और सोशल प्लेटफॉर्मों पर जातिवादी भाषणों के प्रति कठोर कार्रवाई हो।

डॉ. अंबेडकर ने कहा था– ''जाति केवल सामाजिक बुराई नहीं, यह राष्ट्र के नैतिक स्वास्थ्य के लिए विष है।'' आज, जब हम इन घटनाओं पर दृष्टि डालते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि यह विष अब भी हमारी चेतना में बह रहा है। भारत को सचमुच आधुनिक, समानतामूलक और संवैधानिक समाज बनाना है, तो हमें केवल मूर्तियों से नहीं, बल्कि विचारों से अंबेडकर को जीवित रखना होगा।

भगवान कहाँ है ?

कमलेश्वर साहू

भगवान ने कहा
मैं मंदिर में रहता हूं
लोगों ने सुना
और मंदिर गए।

भगवान ने कहा
मैं मस्जिद में रहता हूं
लोगों ने सुना
और मस्जिद की ओर चलने लगे।

भगवान ने कहा
मैं एक चर्च में रहता हूं
लोगों ने सुना
और चर्च की ओर जाने वाले रास्ते
पर चल पड़े।

भगवान ने कहा
मैं एक गुरुद्वारे में रहता हूं
लोगों ने सुना
और गुरुद्वारे गए।

भगवान ने कहा
दरअसल मैं
उस आदमी में रहता हूं
उस आदमी की आत्मा में रहता हूं।

भगवान ने
जिस आदमी की ओर इशारा किया
वो
मंदिर में झाड़ू लगा कर
मस्जिद में
झाड़ू लगाने जा रहा था.

दूसरे दिन
उस आदमी को
काम से निकाल दिया गया

कुछ दिनों के बाद
पता चला
उसकी हत्या हुई है।

लोगों ने भगवान पर
पहली बार संदेह किया...

भिन्न-भिन्न श्रम

-रंगनायकम्मा

श्रम की किस्मों की बात करें, तो 'शारीरिक श्रम' और 'मानसिक' या 'बौद्धिक श्रम' का भेद स्पष्ट है। इन दो किस्मों के श्रम में भी 'कुशल' और 'अकुशल' श्रम के बीच भेद है।

'शारीरिक श्रम' में सोचने की जरूरत बहुत थोड़ी होती है। वहीं पर 'बौद्धिक श्रम' में सोचने की जरूरत ज्यादा होती है।

घास काटना, जमीन जोतना, सड़क बनाना, बर्तन माँजना, कपड़े धोना आदि श्रम शारीरिक श्रम के रूप हैं। शारीरिक श्रम के अन्तर्गत अकुशल श्रम के रूप आते हैं। इस तरह के श्रम को सीखने के लिए चन्द दिनों से ज्यादा समय नहीं लगता है। इस तरह के श्रम को सीखने के लिए बहुत सारे उत्पाद भी नहीं लगते।

सिलाई, बढ़ईगिरी, खाना बनाना, बुनना और बस या ट्रक चलाना भी शारीरिक श्रम की किस्में ही हैं। ये सब शारीरिक श्रम ही नहीं, कुशल श्रम भी हैं। इस तरह के श्रम को सीखने के लिए चन्द दिन या सप्ताह काफी नहीं होते। समय इससे कहीं ज्यादा लगता है। ऐसे श्रम को सीखने के लिए बहुत सारे उत्पाद लग जाते हैं।

पढ़ाना, मरीजों का इलाज करना (चिकित्सा-कर्म), वैज्ञानिक शोध आदि श्रम बौद्धिक था मानसिक श्रम हैं। बौद्धिक श्रम के अन्तर्गत भी कुशल और अकुशल किस्म के श्रम आते हैं। 'पढ़ाने' के अन्तर्गत भेद है निम्न दर्जो को पढ़ाना और उच्च दर्जों को पढ़ाना। ऐसे भेद चिकित्सा-कर्म और वैज्ञानिक शोध-कार्य में भी होते हैं।

किसी भी बौद्धिक श्रम को सीखना बहुत ज्यादा समय और बहुत सारे उत्पाद खपा देता है। बौद्धिक श्रम में कुशल श्रम को सीखना और भी ज्यादा समय और संसाधनों की मांग करता है। श्रम की किस्मों को इस तरह अनेक किस्मों में विभाजित किया जा सकता है।

'श्रम' किसी भी प्रकार का हो, वह श्रम ही होता है। श्रम करते समय पूरा शरीर मेहनत कर रहा होता है। कुछ घण्टों तक श्रम करने के बाद लोग थक जाते हैं। बौद्धिक श्रम के मुकाबले शारीरिक श्रम करने पर लोग जल्दी थक जाते हैं। थक जाने पर श्रम करना बन्द कर कुछ समय विश्राम करने की जरूरत होती है। इससे शरीर को फिर से श्रम कर पाने के लिए ऊर्जा मिल जाती है।

तरह-तरह के श्रम के बीच भिन्नताओं के चलते श्रम के मूल्य भी भिन्न-भिन्न होते हैं। कुछ ज्यादा, तो कुछ कम। 1 घण्टा पढ़ाने के श्रम का मूल्य 1 घण्टा घास काटने के श्रम के मूल्य से ज्यादा होता है। दोनों एक-एक घण्टे के श्रम हैं। फिर भी इनके मूल्य अलग-अलग हैं। इसलिए कि अलग-अलग तरह के इन श्रमों को सीखने के लिए जो समय और चीजों की लागत लगती है वह अलग-अलग है। 'मूल्य के नियम' के मुताबिक पढ़ाने के श्रम का मूल्य ज्यादा होना और घास काटने के श्रम का मूल्य कम होना उचित है। लेकिन 'मूल्य का नियम' हमें यह नहीं बताता कि इन मूल्यों में ठीक-ठीक कितना फर्क होना चाहिए। फर्क निर्भर करता है समाज की उन स्थितियों पर जिसमें ये अलग-अलग श्रम किये जा रहे हों।

अगर हम 1 घण्टे के शारीरिक श्रम और 1 घण्टे के बौद्धिक श्रम पर विचार करें, तो दोनों एक-एक घण्टे के हैं फिर भी उनके मृत्य का अलग-अलग होना आश्चर्य की बात हो सकती है। इस फर्क को हम इस तरह समझे: एक-एक किलो तीन चीजों को लें गुड़ कपास और लोहा। इनका आयतन कितना- कितना होगा? एक किलो कपास का आयतन काफी ज्यादा होगा। एक बड़े टोकरे जितना। एक किलो गुड़ इस टोकरे के एक कोने में ही सिमट जायेगा, जबकि एक किलो लोहे से टोकरे का तल भी ढँक नहीं पायेगा। वजन तीनों उत्पादों का समान है, पर आयतन बिल्कुल अलग-अलग। लोहे में कण एक-दूसरे से कसे हुए होते हैं, बीच-बीच में खाली जगह बहुत कम होती है। गुड़ में ये कण एक-दूसरे से थोड़े दूर-दूर होते हैं। कपास की तो कहने की जरूरत ही नहीं। उसके कण एक-दूसरे से बहुत ज्यादा दूर-दूर होते हैं। श्रम के मूल्यों की भिन्नता को हम इसी तरह समझ लें। अगर हम 10 अलग-अलग प्रकार के श्रम देखें, हर श्रम एक-एक घण्टे का, तो उनके मूल्य भिन्न-भिन्न होते हैं - कुछ ज्यादा, तो कुछ कम। इन 10 अलग-अलग प्रकार के श्रमों में दो या तीन के मूल्य समान हो सकते हैं। बढ़ई का श्रम और दर्जी का श्रम एक

ही मूल्य के हो सकते हैं। लेकिन सभी प्रकार के श्रमों का मूल्य समान नहीं हो सकता।

सवाल और जवाब

1. कुदरती तौर पर मौजूद किसी जमीन पर जुताई का श्रम किया जाता है। क्या उस जमीन का कोई मूल्य होगा ?

जवाब : होगा। लेकिन यह मूल्य जुताई के श्रम के कारण होगा। यह मूल्य इस श्रम का होगा, न कि जमीन का। इस जमीन पर जो फसल उगेगी, उसके मूल्य में जुताई के श्रम का मूल्य जुड़ा होता है।

2. एक व्यक्ति है जो आम तौर पर घास–कटाई करता है। दूसरा है जो पढ़ाने का काम करता है। इनमें से कौन–सा शारीरिक श्रम है ? कौनसा बौद्धिक श्रम है ?

जवाब : घास–फटाई शारीरिक श्रम है। पढ़ाना बौद्धिक श्रम है।

3. कोई घास–कटाई करने वाला व्यक्ति क्या पढ़ाने का काम कर सकता है ? पढ़ाने का काम करने वाला क्या घास–कटाई कर सकता है ?

जवाब : दोनों अगर सीखें हों तो यह या वह ही क्यों सारे श्रम कर सकते हैं। बौद्धिक श्रम करने वाला बड़े कम समय में शारीरिक श्रम सीख सकता है। शारीरिक श्रम करने वाले को बौद्धिक श्रम सीखने के लिए ज्यादा समय लगा सकता है। अलग–अलग तरह के श्रम अगर छोटी उम्र में सिखाये जायें तो कोई भी एक श्रम करने वाले व्यक्ति को दूसरी किसी भी तरह का श्रम सीखने में काफी आसानी हो जाती है।

4. 'मूल्य का नियम' क्या है ?

जवाब : यह नियम वह है जो मूल्य से जुड़े नियम बताता हो। एक नियम यह है कि विनिमय समान मूल्यों के बीच होते हैं। दूसरा नियम यह है कि बौद्धिक श्रम का मूल्य शारीरिक श्रम के मूल्य से ज्यादा होता है। मूल्य से सम्बन्धित सभी नियम 'मूल्य के नियम' में आते हैं।

5. बौद्धिक श्रम का मूल्य शारीरिक श्रम से कितना ज्यादा होता है ? दुगुना, चार गुना या दस गुना ?

जवाब: मूल्य का नियम इतना ही बताता है कि बौद्धिक श्रम का मूल्य शारीरिक श्रम से ज्यादा होगा। यह नहीं बताता कि कितना ज्यादा। अगर दोनों के बीच बहुत ज्यादा अन्तर हो, तो शारीरिक श्रम के साथ अन्याय बहुत ज्यादा होगा। यह अन्तर कितना होगा, यह निर्भर करता है समाज विशेष के श्रम–सम्बन्धों के स्वरूप पर। हमने अभी श्रम–सम्बन्धों की बात नहीं की है।

6. शारीरिक श्रम के मूल्य और बौद्धिक श्रम के मूल्य के बीच अन्तर क्या जरूरी है ? क्या यह सही है ? सभी तरह के श्रम का मूल्य क्या समान नहीं हो सकता ?

जवाब : अगर सभी तरह के श्रम का मूल्य समान हो, तो ज्यादा खर्चीला और ज्यादा समय लेने वाला श्रम करने के लिए कोई आगे आयेगा ही नहीं। उस श्रम को करने वाला कोई होगा ही नहीं। सारे लोग उसी श्रम को करना चाही जो ज्यादा आसान हो और जो दिलचस्पी का हो। फिर कुछ किस्म के श्रम समाज से विलुप्त होते जायेंगे और समाज की कुछ जरूरतें पूरी नहीं हो पायेंगी। इस बात को समझने के लिए पहले हमें बहुत सारी और बातें जाननी होंगी। उस विस्तार में जाना यहाँ सम्भव नहीं है।

नया हुक्मनामा

जावेद अख़्तर

किसी का हुक्म है सारी हवाएं,
ज़रा ये सरकशी कम कर लें,
अपनी, हद में ठहरें।
उभरना, फिर बिखरना,
और बिखरकर फिर उभरना,
गलत है उनका ये हंगामा करना।

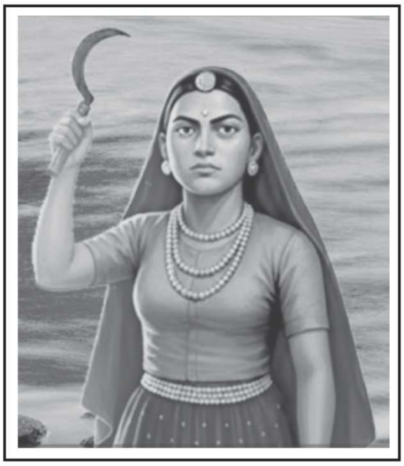
ये सब है सिर्फ़ वहशत की अलामत,
बगावत की अलामत।
बगावत तो नहीं बर्दाश्त होगी,
ये वहशत तो नहीं बर्दाश्त होगी।
अगर लहरों को है दरिया में रहना,
तो उनको होगा अब चुपचाप बहना।

किसी का हुक्म है इस गुलिस्तां में,
बस अब एक रंग के ही फूल होंगे।
कुछ अफसर होंगे जो ये तय करेंगे,
गुलिस्तां किस तरह बनना है कल का।

भील बालिका काली बाई

–भूपिंदर उपराम

भील जनजाति की एक बालिका काली बाई द्वारा अपने गुरु जी के लिए दिया गया बलिदान राजस्थान के शिक्षा जगत के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। एक छोटे और पिछड़े गाँव की एक आदिवासी भील बालिका द्वारा मात्र 12 वर्ष की आयु में दिए गए त्याग का उदाहरण मिलना कठिन है। राजस्थान के दक्षिणी भाग में आदिवासियों की एक बड़ी आबादी रहती है। इस क्षेत्र में डूंगरपुर नामक एक ज़िला है, जो उस समय एक रियासत थी। यह रियासत बहुत छोटी, बहुत पिछड़ी और बहुत गरीब थी। इस रियासत के शासक महारावल लक्ष्मण सिंह थे, जो पुरानी परंपराओं को मानने वाले और पिछड़ी सोच वाले थे। वे शिक्षा के प्रचार-प्रसार के विरोधी थे।



उनका मानना था कि अगर रियासत के लोग और किसान साक्षर हो गए, तो वे जागरूक हो जाएँगे और उसकी रियासत के खिलाफ आवाज़ उठाएँगे, जिससे मेरी सत्ता खतरे में पड़ सकती थी। महारावल लक्ष्मण सिंह ब्रिटिश शासन के अधीन अपने राज्य का कामकाज चलाते थे।

1940 के दशक में जहाँ एक ओर अंग्रेजों के खिलाफ स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था, वहीं दूसरी ओर सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा शिक्षा के प्रसार का अभियान भी चल रहा था। भोगी लाल पांड्या के नेतृत्व में समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के लिए एक आंदोलन चल रहा था। इस आंदोलन के तहत गाँव-गाँव में शिक्षा के लिए स्कूल खोले जा रहे थे, जिनमें भील, मीणा, डामोर जैसी आदिवासी और दलित जातियों और गरीब किसानों के बच्चों को शिक्षा दी जाती थी।लोगों को शिक्षा के महत्व के प्रति जागरूक किया गया। इस अभियान के तहत डूंगरपुर राज्य के कई गाँवों और कस्बों में भी स्कूल खोले गए। जब महाराजा लक्ष्मण सिंह को इन गतिविधियों का पता चला, तो उन्होंने और उनके सलाहकारों ने सोचा कि अगर भीलों और मीणों के बच्चों को शिक्षित किया गया, तो हमारे लिए संकट खड़ा हो सकता है। वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होंगे और अपनी माँगें उठाने लगेंगे। इसी सोच के साथ, लक्ष्मण सिंह ने 1942 में इन स्कूलों को कानूनी तौर पर बंद करने का कानून बनाया ताकि ऐसे स्कूलों को चलने से रोका जा सके। इसके लिए नियमित मजिस्ट्रेट नियुक्त किए गए जिन्होंने पुलिस बल के साथ मिलकर स्कूलों को बंद कराना शुरू किया।

भील बहुल गाँव रासतापाल में भी एक स्कूल खोला गया था, जिसकी स्थापना एक देशभक्त नाना भाई खांट ने की थी। सेंगा भाई इसके प्रधानाध्यापक थे और नाना भाई सारा खर्च उठाते थे। मजिस्ट्रेट 19 जून 1947 को अपने दल-बल के साथ स्कूल को बंद कराने पहुँचे। जब पुलिस स्कूल पहुँची, तो नाना भाई और सेंगा भाई दोनों वहाँ मौजूद थे। सुबह हो चुकी थी, बच्चे अभी तक नहीं आए थे। पुलिस ने उनसे स्कूल बंद करने, ताला लगाने और चाबियाँ सरकार को सौंपने को कहा। जब उन्होंने इनकार किया, तो दोनों को लाठियों से पीटा गया। उन्हें बाहर निकालकर पुलिस ने ताला लगा दिया और चाबियाँ सौंपने के लिखित आदेश पर हस्ताक्षर करने को कहा। तब प्रजामंडल आंदोलन में कार्यरत नाना भाई खांट ने हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया, जिस पर पुलिस ने फिर से दोनों को लाठियों से पीटा और घसीटते हुए ले जाने लगी। कुछ कदम चलने के बाद नाना भाई वृद्धावस्था के कारण मर गए, सेंगा भाई भी बेहोश हो गए। लेकिन पुलिस का उद्देश्य दहशत फैलाना था ताकि कोई और राजा के आदेश की अवहेलना करने का साहस न कर सके। इसलिए सैनिकों ने सेंगा भाई की कमर में रस्सी बाँधी और उन्हें जीप के पीछे घसीटते हुए ले जाने लगे।

गाँव के पुरुषों और महिलाओं की भीड़ स्कूल के बाहर जमा हो गई थी।हर कोई दुखी था। ऐसे समाज सेवियों को मारे जाते देख सभी को बहुत दु:ख हो रहा था, लेकिन इतना सब

होने के बावजूद लोग बेबस थे। किसी में भी आगे आकर उन्हें बचाने की हिम्मत नहीं थी। पूरी जनता पुलिस के आतंक से भयभीत थी।

काली बाई उस समय खेतों से आ रही थी। उसके सिर पर घास का गट्ठर और हाथ में दरांती थी। काली बाई भीड़ को चीरती हुई आगे बढ़ी और उसने देखा कि पुलिस उसके गुरु जी को, जिनका बच्चे बहुत सम्मान करते थे, मार रही थी। नाना भाई एक तरफ बेहोश पड़े थे और उसके गुरु जी को जीप के पीछे बाँधकर घसीटा जा रहा था। उसको बहुत गुस्सा आया और वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी, ''मेरे गुरु जी को छोड़ दो, मेरे मास्टर जी को छोड़ दो, जालिमों।'' एक छोटी बच्ची की विनती का सैनिकों पर कोई असर नहीं हुआ। उन्हें तो राजा का आदेश मानना ही था। इसलिए उन्होंने उस बच्ची की बात पर ध्यान नहीं दिया और अपनी कार्रवाई जारी रखी। भावनाओं के वेग में दौड़ती हुई काली बाई अपने गुरु सेंगा भाई के पास पहुँची और जिस दरांती से वह घास काटकर लाई थी, उससे जीप के पीछे बंधी रस्सी एक ही झटके में काट दी। पुलिस की जीप रुक गई और सिपाही फिर से रस्सी बाँधने लगे। काली बाई उन्हें रोकने लगी। वह पूरी कोशिश कर रही थी कि मेरे गुरु को और कोई परेशानी न हो। उस छोटी बच्ची के साहस ने सभी को भावुक कर दिया। वहाँ मौजूद भीड़ में से कई स्त्री-पुरुष आगे आए और सेंगा भाई और काली बाई के चारों ओर इकट्ठा हो गए। काली बाई ने किसी से पानी माँगा और बेहोश सेंगा भाई के चेहरे पर पानी के छींटे मारकर उन्हें होश में लाने की कोशिश करने लगी।

यह सब देखकर पुलिस वाले काली बाई और वहाँ जमा लोगों को धमकाते लगे, लेकिन उन लोगों और काली बाई ने इसकी परवाह नहीं की और गुरु जी की सेवा में लगे रहे। अब तक वहाँ सैकड़ों लोग जमा हो चुके थे। लेकिन पुलिस वहाँ पूरी तरह से दहशत फैलाना चाहती थी, इसलिए पुलिस वालों ने गोलीबारी शुरू कर दी। काली बाई के साथ-साथ कई स्त्री-पुरुष भी घायल हो गए। इस पूरी घटना को देखकर वहां मौजूद लोगों में काफी गुस्सा भड़क गया और उन्होंने मारू ढोल बजाना शुरू कर दिया।आदिवासियों में मारू ढोल को युद्ध की घोषणा माना जाता है। अत: पुलिस ने पूरी स्थिति को समझते हुए तुरंत जीप में सवार होकर अपने थाने की ओर भाग गए। मारू ढोल की आवाज दूर से सुनाई दे रही थी। जिसने भी यह आवाज सुनी, वे सभी अपने हथियार लेकर घटनास्थल की ओर आने लगे, लेकिन मजिस्ट्रेट और पुलिस पहले ही भाग चुके थे। सभी लोग मृतक नाना भाई के शव और घायल सेंगा भाई, काली बाई और अन्य घायल पुरुषों और महिलाओं को उठाकर राजधानी डूंगरपुर ले गए। वहाँ उन सभी को सरकारी अस्पताल में भर्ती कराया गया। 40 घंटे तक जीवन-मरण के बीच संघर्ष करने के बाद, वह बहादुर 12 वर्षीय बालिका काली बाई हमेशा के लिए सो गई।

अपने गुरु को बचाने के लिए अपने प्राणों की आहुति देने वाली काली बाई की स्मृति में लोगों ने एक बड़ा पार्क स्थापित किया। इस पार्क में नाना भाई खांट और काली बाई की मूर्तियाँ स्थापित हैं और हर साल 19 जून को यहाँ एक विशाल मेला लगता है, जहाँ राजस्थान के दूर-दूर से हज़ारों पुरुष, महिलाएँ और बच्चे आते हैं और नाना भाई और काली बाई की मूर्तियों के सामने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। लोक नायका काली बाई के त्याग और बलिदान के गीत और लोकगीत गाते हैं, और उनके बलिदान को दर्शाने वाले नाटक प्रस्तुत किए जाते हैं।

बहादुर लड़की काली बाई के बलिदान को मान्यता देते हुए, राजस्थान सरकार ने वर्ष 2019 में %काली बाई भील मेधावी छात्रा स्कूटी योजना% शुरू की। जिसके तहत 12वीं कक्षा में अच्छा स्कोर करने वाली लड़कियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए मुफ्त स्कूटी दी जाती है।

('भारत की महान वीरांगनाएँ' पुस्तक से)

73550-14055

> ''वे गुलाम है जो कमज़ोरों और उत्पीड़ितों के लिए आवाज़ उठाने से डरते हैं। वे कायर और दब्बू हैं जो धमकाए जाने या नफ़रत से डरतें हैं और सच बोलने और सोचने से डरते हैं। वे गुलाम हैं जो सच्चाई के लिए बहुसंख्यक के खिलाफ संघर्ष में एकजुट होकर या एक दो साथियों के साथ मिलकर आवाज़ नहीं उठाते।''
>
> **-जे.आर. लावेल**

क्वांटम भौतिकी......??

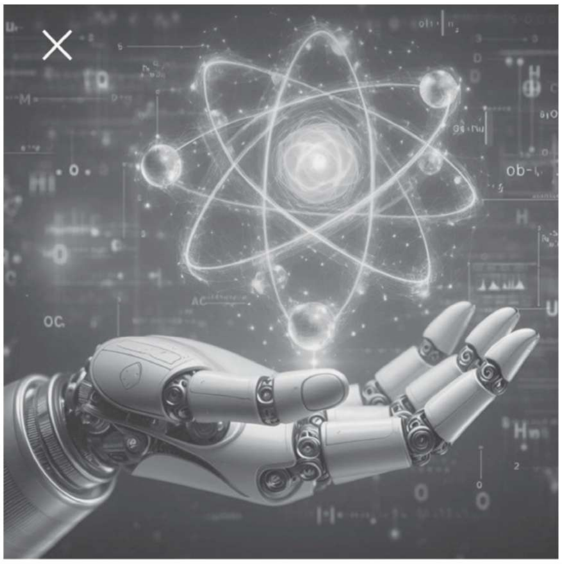
– मनोज अभिज्ञान

आज के समय में वैज्ञानिक शब्दावली का ऐसा फैशन चल पड़ा है कि जिन्हें न विज्ञान का बुनियादी ज्ञान है और न ही अध्यात्म की गंभीर समझ, वे भी 'क्वांटम' जैसे जटिल और अत्यंत तकनीकी शब्दों का बड़े आत्मविश्वास से उपयोग करने लगे हैं। खासतौर पर जब कोई योगगुरु, लाइफ कोच या स्वयंभू अध्यात्मिक वक्ता यह कहता है कि 'आत्मा क्वांटम फील्ड है' या 'क्वांटम स्तर पर सब कुछ एक है', तो श्रोता प्रभावित हो जाते हैं, बिना यह सवाल पूछे कि क्या इस बात का कोई वैज्ञानिक प्रमाण है ? क्या यह कोई शोधपत्र में प्रकाशित निष्कर्ष है ? या फिर शब्दों का आकर्षक मायाजाल मात्र है ?

क्वांटम भौतिकी (Quantum Physics) आधुनिक विज्ञान की सबसे गूढ़ और परिष्कृत शाखाओं में से एक है। यह परमाणु और उससे भी छोटे कणों के व्यवहार को समझने की कोशिश करती है। इस क्षेत्र में अनिश्चितता (Uncertainty), द्वैतता (Duality) और संभाव्यता (Probability) जैसे सिद्धांत शामिल हैं, जो कठोर गणितीय मॉडल और प्रयोगशाला परीक्षणों द्वारा स्थापित होते हैं। यहां यह मान लिया गया है कि घटनाएं निश्चित नहीं होतीं, बल्कि वे संभावनाओं की तरह घटती हैं, और उन्हें देखने या मापने की प्रक्रिया भी परिणामों को प्रभावित कर सकती है।

दूसरी ओर अध्यात्म, मूलतः अनुभवों, विश्वासों और निजी बोध पर आधारित होता है। आत्मा, परमात्मा, मोक्ष, पुनर्जन्म जैसे प्रश्न इस क्षेत्र का हिस्सा हैं। अध्यात्म न तो गणना पर चलता है, न दोहराए जा सकने वाले प्रयोगों पर। यह आंतरिक अनुभव, आस्था और मानसिक अनुशासन पर आधारित होता है।

इन दोनों क्षेत्रों की प्रकृति, पद्धति और प्रयोजन एक-दूसरे से भिन्न हैं। विज्ञान वस्तुनिष्ठता (objectivity) पर आधारित है, जबकि अध्यात्म आत्मानुभूति (subjectivity) पर। विज्ञान में किसी दावे को तब तक नहीं माना जाता जब तक कि वह दोहराए जा सकने वाले ठोस प्रमाणों से साबित न



हो। अध्यात्म, इसके विपरीत, व्यक्तिगत अनुभूति और आस्था का क्षेत्र है, जहां प्रमाण की जगह श्रद्धा और अभ्यास काम करता है।

समस्या तब शुरू होती है जब इन दोनों क्षेत्रों को बिना किसी समझदारी के जोड़ने की कोशिश की जाती है। 'क्वांटम हीलिंग', 'स्पिरिचुअल थैरेपी', 'क्वांटम कॉन्शियसनेस' जैसे शब्द आज के सोशल मीडिया युग में खूब बिक रहे हैं। इनका उद्देश्य ज्ञान नहीं, बल्कि भ्रम फैलाकर लाभ कमाना है। इन शब्दों के पीछे कोई वैज्ञानिक शोध नहीं होता। केवल दिखावे का एक ढांचा होता है, जहां विज्ञान की गंभीर भाषा को सतही प्रवचनों और उत्पादों में ठूंसा जाता है। जैसे: 'क्वांटम मेडिटेशन से डी.एन.ए. बदलता है', 'क्वांटम एनर्जी से चक्र जाग्रत होते हैं', 'क्वांटम फिजिक्स ने आत्मा की अमरता सिद्ध कर दी है' आदि। ऐसे दावे हर मंच, यूट्यूब चैनल और इंस्टाग्राम रील में तैरते हैं। और दुख की बात है कि इन्हें चुनौती देने वाला कोई नहीं होता।

विज्ञान का कार्य यह पता लगाना होता है कि किसी वस्तु, प्रक्रिया या व्यवहार को मापा और दोहराया जा सकता है या नहीं। वैज्ञानिक पद्धति तीन प्रमुख स्तंभों पर टिकी होती है-

1. प्रेक्षण (Observation) – वस्तु या घटना का सटीक निरीक्षण

2. परिकल्पना (Hypothesis) – एक अनुमान जो परीक्षण योग्य हो

3. प्रयोग और सत्यापन (Experimentation and Verification) – ऐसा परीक्षण जो दोहराया जा सके और वस्तुनिष्ठ हो।

अब सवाल यह उठता है कि क्या आत्मा को मापा जा सकता है? क्या उसके अनुभव को दोहराया जा सकता है? क्या आत्मा की कोई सार्वभौमिक परिभाषा है जिस पर वैज्ञानिक समुदाय सहमत हो सके?

उत्तर है: नहीं।

आज तक न कोई ऐसा यंत्र बना है जो बता सके कि आत्मा शरीर में कहां है, और न ही कोई प्रयोगशाला यह दिखा सकी है कि मृत्यु के बाद कोई 'ऊर्जा' शरीर से बाहर निकलती है जो आत्मा कही जा सकती है। हां, Near-Death Experiences (NDEs) को कई लोग आत्मा का प्रमाण मानते हैं, लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि से ये अनुभव मस्तिष्क की ऑक्सीजन की कमी, दवाओं के प्रभाव या मनोवैज्ञानिक स्थितियों का परिणाम होते हैं, किसी अमूर्त, अमर सत्ता की पुष्टि नहीं।

वहीं दूसरी ओर, अध्यात्म का कार्य इन प्रश्नों से जूझना है जिन्हें विज्ञान अक्सर 'प्रश्न से बाहर' मानता है। 'मैं कौन हूं?', 'मृत्यु के बाद क्या है?', 'जीवन का उद्देश्य क्या है?' जैसे प्रश्नों का उत्तर अध्यात्म अपने ढंग से खोजता है। लेकिन इसकी प्रक्रिया वैज्ञानिक नहीं होती। यह दर्शन, साधना और अनुभूति की प्रक्रिया होती है। यहां प्रमाण की अपेक्षा नहीं होती, बल्कि विश्वास और अनुभव की भूमिका होती है। यही उसकी सीमा भी है और गरिमा भी।

वास्तविक संकट वहां आता है जब अध्यात्म के प्रचारक विज्ञान की भाषा को उधार लेकर अपने प्रवचनों को वैधता देने लगते हैं। 'क्वांटम आत्मा', 'डी.एन.ए. का दिव्य उत्थान', 'ऊर्जा शरीर की वैज्ञानिक सफाई' जैसी शब्दावली से श्रोताओं को यह भ्रम होता है कि यह सब विज्ञान से प्रमाणित है। और यही भ्रम जब यूट्यूब वीडियो, इंस्टाग्राम रील्स, कॉर्पोरेट सेमिनार और महंगे कोचिंग प्रोग्रामों के ज़रिए फैलता है, तो आम जनमानस सवाल पूछना बंद कर देता है। यह न केवल भाषा की मिलावट है, बल्कि बुद्धि का भी शोषण है।

विज्ञान और अध्यात्म दो अलग-अलग क्षेत्र हैं, जो कि अलग-अलग दृष्टिकोण से संबंधित हैं। विज्ञान तथ्यों, प्रयोगों और प्रमाणों परप आधारित है, जबकि अध्यात्म में ऐसा कुछ भी नहीं होता है। अध्यात्म के अनुभवों को सच्चा साबित करने के लिए, इसको मानने वालों के पास कोई भी प्रयोग सिद्धांत य यंत्र उपलब्ध नहीं है। दूसरी और विज्ञान प्राकृतिक घटनाओं, पदार्थ, ऊर्जा और उनके आपसी क्रियाओं का अध्ययन करता है। यह परिक्षण और प्रमाण के आधआर पर ज्ञान प्राप्त करता है। विज्ञान ने मानव समाज को कई क्षेत्रों में प्रगति दी है- जैसे चिकित्सा, संचार, अंतरिक्ष अन्वेषण, कृषि और ऊर्जा। विज्ञान की विशेषता यह है कि यह तथ्यों और प्रयोगों पर भरोसा करता है, और किसी भी सिद्धांत को तब तक स्वीकार नहीं करता जब तक वह प्रमाणित न हो।

विज्ञान और अध्यात्मक को जबरदस्ती एक-दूसरे में नहीं ठूंसना चाहिए। जब कोई कहे कि 'क्वांटम फिजिक्स ने आत्मा का प्रमाण दे दिया है', तो हमें तुरंत पूछना चाहिए-'उस शोध-पत्र का नाम बताइए, वह कौन-से साइंस जर्नल में छपा है?' यदि हम यह नहीं पूछेंगे, तो अंधविश्वास फिर से लौटेगा; सिर्फ भ्रामक पुस्तकों से नहीं, टेक टॉक्स और इंस्टाग्राम वीडियोज़ के रूप में। इसलिए आवश्यकता है कि हम वैज्ञानिक सोच को केवल शब्दों में नहीं, व्यवहार में उतारें। 'क्वांटम' कोई जादुई मंत्र नहीं, बल्कि कठोर गणना और प्रयोगशाला का परिणाम है। इसे सिर्फ सजावट के लिए इस्तेमाल करना ज्ञान का नहीं, भ्रम का उत्सव है।

डॉ. अब्राहम टी कावूर

भूतों-प्रेतों, देवी-देवताओं, परियों और फ़रिश्ते में दृढ़ विश्वास रखने वाले बहुत से लोगों को मन के भ्रम के कारण ही अंधेरे में भी यही चीज़ें देखाई देतीं हैं। बचपन में उनके मन में जो डर भर दिया जाता है, उसी के कारण ज़्यादातर लोग इनके पास जाकर इनकी जाँच करने की हिम्मत नहीं करते। जिन लोगों ने साहस और वैज्ञानिक रूप से इन चीज़ों की जाँच की है, वे जानते हैं कि ये चीज़ें दृष्टि भ्रम या मानसिक भ्रम के कारण होती हैं।

विज्ञान और तर्क

कुछ महान वैज्ञानिकों के विचार

विज्ञान की दुनिया में, तर्क (reason) और अवलोकन (observation) दो स्तंभों की तरह हैं। उन्होंने ने इन दोनों को मिलाकर ब्रह्मांड के रहस्यों को समझने का प्रयास किया है। यहाँ कुछ प्रमुख वैज्ञानिकों के तर्कशील विचारों का सारांश दिया गया है।

आइजैक न्यूटन

न्यूटन का मानना था कि ब्रह्मांड एक विशाल यांत्रिक प्रणाली (mechanical system) है, जो कुछ अपरिवर्तनीय कानूनों (immutable laws) द्वारा शासित है। उन्होंने गुरुत्वाकर्षण (gravity) और गति के नियमों (laws of motion) का वर्णन किया, यह दर्शाते हुए कि पृथ्वी पर और आकाश में भी वही नियम लागू होते हैं। न्यूटन के तर्क का आधार यह था कि प्राकृतिक घटनाओं को गणितीय और तार्किक रूप से समझा जा सकता है। उनका मानना था कि इन नियमों को खोज कर ही हम ब्रह्मांड के बारे में जानकारी हासिल कर सकते हैं।

अल्बर्ट आइंस्टीन

आइंस्टीन का तर्क, न्यूटन के तर्क से थोड़ा अलग था। उन्होंने अंतरिक्ष और समय (space and time) को एक दूसरे से अलग इकाई नहीं माना, बल्कि उन्हें स्पेसटाइम नामक एक ही संरचना (single structure) के हिस्से के रूप में देखा। उनका मानना था कि ब्रह्मांड के नियम पूर्ण नहीं होते, बल्कि वे सापेक्ष (relative) होते हैं। उन्होंने अपने सापेक्षता के सिद्धांत के माध्यम से यह दर्शाया कि समय, गति के अनुसार धीमा या तेज हो सकता है। आइंस्टीन का मानना था कि वैज्ञानिक सिद्धांतों को केवल प्रयोगों के माध्यम से ही नहीं, बल्कि तार्किक कल्पना (logical imagination) और विचार प्रयोगों (thought experiments) के माध्यम से भी विकसित किया जा सकता है।

कार्ल सेगन

प्रसिद्ध खगोलशास्त्री और विज्ञान लेखक कार्ल सेगन का मानना था कि विज्ञान सिर्फ तथ्यों का संग्रह नहीं है, बल्कि यह सोचने का एक तरीका है। उन्होंने वैज्ञानिक संदेहवाद (scientific skepticism) की वकालत की, जिसका मतलब है कि किसी भी दावे को तब तक स्वीकार नहीं करना चाहिए जब तक कि उसके लिए पर्याप्त सबूत (evidence) न हों। सेगन के अनुसार, विज्ञान एक आत्म-सुधार प्रक्रिया (self-correcting process) है, जिसमें गलतियों को लगातार सुधारा जाता है। उनका प्रसिद्ध कथन था, ''असाधारण दावों के लिए असाधारण सबूतों की आवश्यकता होती है'' ("Extraordinary claims require extraordinary evidence")। यह तर्क विज्ञान के मूलभूत सिद्धांतों में से एक है।

स्टीफन हॉकिंग

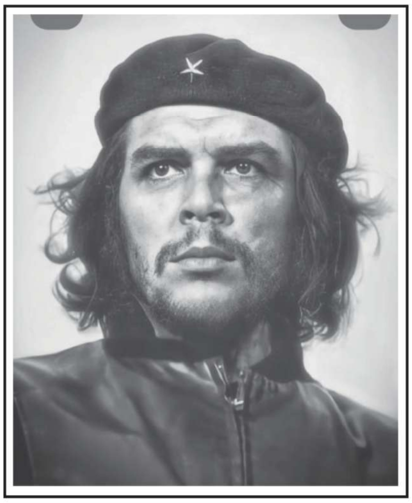
स्टीफन हॉकिंग ने ब्लैक होल्स (black holes) और ब्रह्मांड की उत्पत्ति (origin of the universe) पर अपने विचारों से भौतिकी की दुनिया में क्रांति ला दी। हॉकिंग का तर्क था कि ब्रह्मांड का कोई निश्चित आदि या अंत नहीं है, और इसे भौतिकी के नियमों द्वारा पूरी तरह से समझा जा सकता है। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि क्वांटम यांत्रिकी (quantum mechanics) और सामान्य सापेक्षता (general relativity) को मिलाकर एक एकीकृत सिद्धांत (unified theory) बनाना संभव है। हॉकिंग के अनुसार, हमें यह नहीं पूछना चाहिए कि ब्रह्मांड का निर्माण किसने किया, बल्कि यह पूछना चाहिए कि इसका निर्माण क्यों हुआ - और इसका उत्तर भौतिकी के नियमों में निहित है।

सारांश

इन सभी वैज्ञानिकों ने तर्क के माध्यम से ब्रह्मांड को समझने का प्रयास किया। न्यूटन ने इसे एक घड़ी के समान यांत्रिक प्रणाली के रूप में देखा, आइंस्टीन ने इसे एक सापेक्ष और लोचदार (elastic) संरचना के रूप में, सेगन ने इसे संदेहवाद की प्रक्रिया के रूप में, और हॉकिंग ने इसे भौतिकी के नियमों पर आधारित एक आत्मनिर्भर प्रणाली के रूप में। ये सभी विचार हमें दिखाते हैं कि तर्क और अवलोकन के माध्यम से हम ब्रह्मांड के रहस्यों को सुलझा सकते हैं, और विज्ञान एक कभी न खत्म होने वाली यात्रा है।

कॉमरेड चे ग्वेरा

इस महान क्रांतिकारी योद्धा का जन्म 14 जून 1928 को अर्जेंटीना के रोजेरियो शहर में डॉन अर्नेस्टो ग्वेरा लिंच के घर हुआ था। उनके पिता ने कहा था कि अपनी खराब आर्थिक स्थिति के बावजूद, वे अपने पांचों बच्चों को उच्च शिक्षा प्रदान करने में सफल रहे। मुझे अपने बेटे अर्नेस्टो चे ग्वेरा पर सबसे ज्यादा गर्व है, जिसे मैं 'टीटी' कहता था। वह एक सच्चे इंसान और सच्चे योद्धा थे। उन्होंने डॉक्टर बनने का फैसला किया क्योंकि उन्हें बचपन से ही अस्थमा था। उन्होंने अर्जेंटीना की राजधानी से मेडिकल की डिग्री हासिल की और अपनी पढ़ाई के दौरान, 1953 में, वे एक दोस्त के साथ मोटरसाइकिल पर कोलंबिया, पेरू, चिली और वेनेजुएला गए। अगले वर्ष, उन्होंने बोलीविया, इक्वाडोर, कोलंबिया, कोस्टा रिका और पनामा जैसे लैटिन अमेरिकी देशों का दौरा किया फिर उन्होंने मेक्सिको के एक हृदय रोग अस्पताल में काम करना शुरू कर दिया। जब उन्हें पता चला कि फिदेल कास्त्रो क्यूबा में क्रांतिकारी युद्ध लड़ रहे हैं, तो वे उनके मित्र बन गए। वे फिदेल कास्त्रो के उन 81 मित्रों में शामिल थे जो 25-11-1956 को नाव से क्यूबा में प्रवेश करने का प्रयास कर रहे थे, लेकिन क्यूबा के तानाशाह बतिस्ता की सेना ने तट पर हवाई हमला कर दिया। उनमें से केवल 12 ही वहाँ से पहाड़ियों पर चढ़ने में सफल रहे, जिनमें चे ग्वेरा, फिदेल कास्त्रो और उनके भाई राउल शामिल थे। यहाँ लड़ते हुए चे ग्वेरा छह बार घायल हुए। 2 जून 1959 को उन्होंने साथी क्रांतिकारी एलीडा मार्च से विवाह किया। उनके चार बच्चे हुए। 1959 में जब क्यूबा में क्रांति हुई, तो चे ग्वेरा को उद्योग जगत का दूसरे नंबर का अधिकारी बनाया गया, लेकिन वे एक दिन भी मंत्री की कुर्सी पर नहीं बैठे। क्यूबा में क्रांति का मार्ग प्रशस्त करने के बाद, 14 मार्च, 1965 को वे अचानक भूमिगत हो गए। लोगों ने पूछा कि चे ग्वेरा कहाँ हैं? तो कास्त्रो ने कहा कि वे जहाँ कहीं भी होंगे, क्रांति के लिए काम कर रहे होंगे। 3 अक्टूबर, 1965 को, कास्त्रो ने लोगों को चे का एक पत्र पढ़ कर बताया कि वे युद्ध लड़ने के लिए बोलीविया के जंगलों में गुरिल्लाओं को संगठित कर रहे हैं। उन्होंने कहा, "अगर मैं युद्ध में लड़ते हुए मारा भी गया, तो भी अंत में मैं इंकलाब के बारे में ही सोच रहा हूँगा।" 8 अक्टूबर, 1967 को, बोलीविया की उरो खदान में घायल होने के बाद उन्हें पकड़ लिया गया। अगले दिन, बोलीविया के सैनिकों ने हिगुएरा गाँव में उनसे सबसे पहले पूछा, "क्या आप अपनी अमरता के बारे में सोच रहे हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "नहीं, मैं इंकलाब की अमरता के बारे में सोच रहा हूँ।" इसके बाद, उन्हें नौ गोलियाँ मारकर शहीद कर दिया गया और उनके हाथ काट दिए गए। ये हाथ आज भी क्यूबा के लोगों द्वारा अपने नायक को श्रद्धांजलि देने के लिए सुरक्षित रखे गए हैं। क्यूबा में उनकी शहादत का दिन मनाया जाता है। उन्हें प्यार से चे ग्वेरा के बजाय छी ग्वेरा के नाम से याद किया जाता है।



वोल्टेयर

जब तक जनता स्वयं अपनी स्वतंत्रता का प्रयोग करने का प्रयास नहीं करेगी, तब तक तानाशाहों का शासन चलता रहेगा, क्योंकि तानाशाह बहुत सक्रिय और ऊजावान होते हैं। वे जनता को बेड़ियों में जकड़े रखने के लिए ईश्वर, धर्म या ऐसी ही किसी भी चीज़ का सहारा लेने से नहीं हिचकिचाएँगे।



स्त्रियों के मनोविकार

-डा. नरेन्द्र दाभोलकर

हम जिस सामाजिक स्थिति में रहते हैं, उस स्थिति का और हमारी मनोवृत्ति का एक-दूसरे पर प्रभाव होता है। पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में बरसों से स्त्रियों को जो दोयम स्थान मिला है उसका उनकी मनोवृत्ति पर बड़ी मात्रा में प्रभाव दिखाई देता है। स्त्री और पुरुषों में कुछ मानसिक बीमारियों की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। गर्भधारण और प्रजनन प्रक्रिया के साथ महिलाओं की मनोवृत्ति में जो बदलाव दिखाई देते हैं उन पर अलग से सोचना होगा। इसलिए प्रस्तुत अध्याय में महिलाओं की मानसिक बीमारियों के बारे में जान लेते हैं।

पंद्रह दिन पहले हमें लड़की हुई। बच्ची ठीक है पर मेरी पत्नी नीता पिछले आठ-दस दिनों से उदासीन है। छोटी-छोटी बातों पर गुस्सा करती है। पहली संतान है इसलिए घर के सभी लोग खुश हैं। हमारे परिवार में लड़का ही चाहिए ऐसी कोई बात नहीं है। फिर भी नीता का व्यवहार ऐसा क्यों हो रहा है?

गर्भधारण और प्रजनन प्रक्रिया का समय महिलाओं के लिए मानसिक उथलपुचल का समय होता है। प्रजनन के समय जैसे शारीरिक बदलाव होते हैं, उसी प्रकार मानसिक बदलाव भी होते हैं। सामान्यत: 20 प्रतिशत महिलाओं में प्रजनन प्रक्रिया के बाद आपकी पत्नी की तरह कुछ लक्षण देखने को मिलते हैं। इसे ही प्रजनन के बाद आनेवाली उदासीनता कहते हैं। इसके कई कारण हैं। प्रजनन प्रक्रिया की वजह से शरीर में होने वाले संप्रेरक (हॉर्मोन्स) के बदलाव उसका प्रमुख कारण हैं। इसके अलावा गर्भधारण और प्रजनन प्रक्रिया का तनाव, बच्चा स्वस्थ, तंदुरुस्त होगा या नहीं इसकी चिंता, बच्चे को दूध पिलाने के लिए रात को जागना, बच्चे की हमेशा की देखभाल आदि के कारण भी तनाव बढ़ता है।

हमारे समाज में लड़की पैदा होने के बाद इसके लिए सामान्यत: स्त्रियों को ही दोषी ठहराया जाता है। इसी वजह से 'लड़की पैदा हुई तो मुझमें ही कुछ खामियाँ हैं और लड़का पैदा हुआ तो जिंदगी सफल हुई' यह बात स्त्री के दिल में पैठी होती है। ऐसी स्थिति में दूसरे लोग भले ही कुछ भी न कहें किंतु वह स्त्री खुद को दोषी मानने लगती है।

इनमें से एक या एक से ज्यादा कारण एक साथ आकर प्रजनन प्रक्रिया के बाद आनेवाली उदासीनता के लक्षण के रूप में दिखाई देते हैं। कई बार दस से पंद्रह दिन में शरीर और मन के नई स्थितियों से परिचित होने के बाद ये लक्षण कम होते हैं। किंतु पंद्रह प्रतिशत महिलाओं में दस-पंद्रह दिनों से अधिक समय तक उदासीनता के लक्षण रहते हैं। ऐसे समय में प्रजनन प्रक्रिया के बाद की उदासीनता को, बीमारी हुई है ऐसा समझना चाहिए। उदासीनता की बीमारी में हमारे देखे हुए सभी लक्षण इस समय दिखाई देते हैं। इस उदासीनता की मात्रा बढ़ने के बाद स्त्री का खुद की ओर और बच्चे की ओर ध्यान न देना जैसे लक्षण दिखाई देते हैं।

किंतु ऐसी स्थिति में हमें कैसा व्यवहार करना चाहिए यह हमारी समझ में नहीं आ रहा है।

ऐसे वक्त परिवारजनों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। शिशु की माँ से बार-बार सुसंवाद करना महत्त्वपूर्ण होता है। बच्चे की देखभाल में परिवार के अन्य सदस्यों और विशेषकर पति को मदद करना जरूरी होता है।

शिशु की माँ को आवश्यक नींद मिलनी चाहिए यह बात महत्त्वपूर्ण है।

उदासीनता के लक्षण यदि दो हफ्तों से ज्यादा समय रहते हैं तो स्त्री रोग विशेषज्ञा की सलाह के अनुसार मनोविद की सहायता लेनी चाहिए।

उदासीनता की तीव्रता ज्यादा न होने पर समुपदेशन के जरिये इलाज कराना फायदेमंद होता है क्योंकि दवाइयों के कारण अल्प मात्रा में ही क्यों न हो दूध के साथ दवाइयों का अंश शिशु के शरीर में जाता है। पर ज्यादा उदासीनता होने पर उदासीनता कम करनेवाली दवाइयाँ लेना जरूरी होता है। इन दवाइयों का बच्चे के दूध पर कोई साइड इफेक्ट न हो ऐसी दवाइयाँ प्रयुक्त की जाती हैं। इन दवाइयों से उदासीनता की बीमारी ठीक होती है किंतु इसके बाद भी लगभग एक साल तक दवाइयाँ लेनी चाहिए। नहीं तो यह उदासीनता की बीमारी फिर से होने की संभावना होती है।

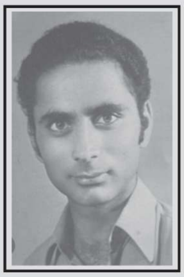
पुरुषों की तुलना में महिलाओं में मनोविकार की मात्रा ज्यादा होती है, क्या यह बात सही है?

सिर्फ उदासीनता की बीमारी के बारे में सोचने पर यह बात सच है। पर स्मृतिभ्रंश जैसी बीमारियाँ पुरुषों में ज्यादातर दिखाई देती हैं। इसलिए सभी बीमारियों के बारे में सोचा जाए तो यह वाक्य अर्धसत्य है। उदासीनता की मात्रा देखी जाए तो स्त्रियों में उदासीनता 15 से 20 प्रतिशत और पुरुषों में 3-5 प्रतिशत है। स्त्रियों में उदासीनता की बीमारी की मात्रा ज्यादा होती है, इसके जैविक कारणों के साथ ही सामाजिक कारण भी हैं।

जैविक कारणों में प्रजनन से संबंधित संप्रेरक (हॉर्मोन्स) की वजह से मानसिकता पर प्रभाव होने की संभावना, यह प्रमुख कारण है। सामाजिक कारणों में पुरुषों के हाथ में सत्ता होने से स्त्रियों को दोयम स्थान मिलता है, यह भी एक कारण है। परिवार में दोयम स्थान होने की वजह से उन्हें कई तनावों का सामना करना पड़ता है। हमारे समाज में महिलाओं के विचारों का और मानसिकता का सम्मान नहीं होता है। इसका परिणाम मानसिक अस्वस्थता होती है जिससे उदासीनता आ सकती है। साथ ही पारिवारिक हिंसाचार के कारण उनके मन की उम्मीद नष्ट होने से उदासीनता आती है।

इससे विपरीत भारत में मानसिक रूप से बीमार पुरुषों को स्त्रियों की तुलना में अच्छे इलाज मिलते हैं। स्त्रियों को समाज में दिए जानेवाले दोयम दर्जे का ही यह प्रतीक है।

बहुत होशियारी से हमारे समाज में स्त्रियों पर मानसिक कमजोरी की मुहर लगाने एक पद्धति है। दरअसल इस बात का कोई भी शास्त्रीय कारण नहीं है। मानसिक दृष्टि से विकारग्रस्त महिलाओं के इलाज और उनकी मानसिकता के बारे में पुरुषों की नकारात्मक सोच से समाज को बाहर निकालने के लिए हमारे समाज का बड़े पैमाने पर प्रबोधन करने की जरूरत है।



मेरा कोई चेहरा नहीं
संबोधन कोई नहीं
धरती का पागल इश्क
शायद वो मेरा है
और ऐसा लगता भी है
मैं हर चीज़ को पार कर जाऊँगा,
हवा की तरह सरसरा के गुजर जाऊँगा,
सज्जनों मेरे गुज़र जाने के बाद भी
मेरी चिंताओं का दामन थामे रखना।

-पाश

पाप से मुक्ति

-सुदेश

सारी जिंदगी पाप किया और कुछ हिस्सा ईश्वर को अर्पित कर दिया। सारी जिंदगी पाप किया और उसकी पाठ पूजा करवा कर अपने गुनाहों को माफ करवा लिया। सारी जिंदगी पाप की मैल चढ़ाते रहे, फिर पवित्र पानी से नहा कर पापमुक्त हो गए।

सारी जिंदगी यहां दूसरे फिरके के इंसानों से नफरत करते रहे और शैतान को पत्थर मार कर गुनाह माफ करवा लिए। जानते हैं कि पाप करना गुनाह है फिर भी पाप करते रहे।

क्योंकि ज़्यादातर सभी धर्मों में किये हुए पापों का इलाज कुछ हिस्सा देकर, पाठ पूजा करवा कर, कहीं माथा टेक कर, कहीं चादर चढ़ा कर, कहीं नहा धोकर पाप मुक्त हो जाने का प्रावधान जो है।

सोच रहा था कि अगर पाप ही न किये जाते तो ऐसा सब कुछ करने की जरूरत ही न पड़ती, न गुनाह न पाप करते, तो ये सब न करना पड़ता ।

गुनाह मुक्त हो जाने के लिए महंगी धार्मिक यात्रायें करता है, रिश्वत चढ़ाता है जिसे वो दान कह देता है, भोजन कराता है जिसे वो भोग कह देता है, उसे नए कपड़े चढ़ाता है जिसे लोग चादर कह देते हैं।

एक पहुंच और पैसे वाले व्यक्ति को अगर पता हो कि उसके द्वारा तोड़े गए ट्रैफिक नियम से वो जुर्माना देकर या पहुँच का इस्तेमाल कर के वो सज़ा से छूट सकता है तो चांस हैं कि वो लापरवाही से गाड़ी चलाकर लोगों को मारता ही फिरेगा, क्योंकि उसे पता है कि उसके द्वारा किये गए गुनाहों से वो कैसे बच सकता है।

इसलिए आज इंसान यही सोच कर, जानबूझ कर, 'पाप' किये जा रहा है गुनाह किये जा रहा है कि जितने मर्जी 'पाप' कर लो, बचाव तो जुर्माना देकर, पूजा पाठ उपाय करके, धार्मिक यात्राएं करके या फिर एजेंट्स के थ्रू हो ही जाना है ।

मुझे लगता है कि वास्तव में इंसान ऐसे पाप मुक्त होने के तरीके ईजाद कर के खुद को भी धोखा दे रहा है

देवदासी प्रथा

–कैलाश जैन

हमारे समाज में बाल विवाह, सती प्रथा, विधवा की बुरी सामाजिक स्थिति आदि जैसी कई कुरीतियाँ रही हैं और आज भी महिलाएँ विभिन्न रूपों में यौन शोषण का शिकार होती हैं। महिलाओं के शारीरिक शोषण की ऐसी ही एक अमानवीय प्रथा है जिसको 'देवदासी प्रथा' कहा जाता है। कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र आदि राज्य इसके गढ़ रहे हैं और आज भी धीमी गति से अवैध घोषित होने के बावजूद भी यह प्रथा किसी न किसी रूप में जारी है।

नेशनल स्कूल ऑफ लॉ, मुंबई और टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, बैंगलोर द्वारा हाल ही में किए गए दो अध्ययनों से पता चला है कि कर्नाटक देवदासी अधिनियम, 1982 के लागू होने के 43 साल बाद भी, राज्य सरकार ने अभी तक इस कानून के संचालन के लिए नियम जारी नहीं किए हैं। 1988 में, आंध्र प्रदेश सरकार ने भी इस प्रथा को अवैध घोषित कर दिया था। इसके बावजूद, 2013 में, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने बताया कि देश में वर्तमान में 4,50,000 देवदासियाँ हैं। यह प्रथा गोया में भी प्रचलित है।

शोध से पता चलता है कि देवदासी प्रथा बहुत प्राचीन है। यह आर्यों के भारत आगमन से पहले से चली आ रही है। जब मूर्ति पूजा के विकास के साथ मंदिरों का निर्माण शुरू हुआ, तो पूजा-पाठ, तंत्र-मंत्र की विधियों में काफी वृद्धि हुई। जब धर्म को राज्य का संरक्षण प्राप्त हुआ, तो भव्य पूजा-अर्चना के कार्यक्रम होने लगे। यहाँ नृत्य-गायन में निपुण सुंदर युवतियों का प्रयोग होने लगा। यहीं से देवदासी प्रथा की शुरुआत हुई।

प्रारंभ में सेवा/पूजा करना ही उद्देश्य था : तीसरी शताब्दी के पूर्वार्ध में इस प्रथा ने गति पकड़ी। लेकिन इसका स्वरूप विशुद्ध रूप से धार्मिक था। पल्लव और चोल राजवंशों के शासनकाल में यह काफी फली-फूली, लेकिन उस समय देवदासियों को नृत्य और संगीत का प्रतिनिधि माना जाता था और उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। प्रसिद्ध इतिहासकार एडगर थर्स्टन ने अपनी पुस्तक 'दक्षिण भारत में जातियाँ और जनजातियाँ' में लिखा है कि 11वीं शताब्दी में, चोल वंश के राजा चोल के शासनकाल में, तंजौर और राजेश्वर मंदिरों में 400 देवदासियाँ थीं। इसी प्रकार, गुजरात के सोमनाथ मंदिर में भी 500 देवदासियों के प्रमाण मिलते हैं।

घृणित जीवन : विजयनगर साम्राज्य के दौरान देवदासियों की प्रथा का महत्व कम होने लगा। अब उनका काम केवल मंदिरों में नृत्य और संगीत के माध्यम से देवी-देवताओं की पूजा करना ही नहीं था, बल्कि राजाओं और सामंतों की वासना को शांत करना भी था। इस नैतिक पतन में, देवदासियाँ धीरे-धीरे सरकारी कर्मचारियों, पुजारियों और धनी लोगों के भोग-विलास की वस्तु बन गईं और आज स्थिति यह है कि देवदासियाँ धार्मिक रूप से मान्यता प्राप्त वेश्याओं का घिनौना जीवन जी रही हैं।

ऐसे बनती हैं देवदासियाँ : अन्य सामाजिक कुरीतियाँ की तरह ही इसमें भी आर्थिक रूप से कमज़ोर और दलित लड़कियों को शामिल किया गया। देवदासी प्रथा का मुख्य केंद्र कर्नाटक राज्य के सौदंती (बेलगाम) कस्बे में एक पहाड़ी पर स्थित देवी यल्लमा का मंदिर है। यहाँ प्रतिवर्ष माघ मास की पूर्णिमा को एक विशाल मेला लगता है। 4-5 वर्ष की छोटी कन्याओं को देवी को समर्पित करके देवदासी बनाया जाता है। एक अनुमान के अनुसार, पिछले 40 वर्षों में इस मंदिर और इसके जैसे कई अन्य मंदिरों में 3 लाख कन्याओं को देवदासी बनाया जा चुका है। कन्या समर्पित करने का मुख्य कारण है - मन्नत। घर में किसी बीमारी के ठीक होने, किसी कठिन कार्य के पूर्ण होने या किसी संकट को टलने के लिए लोग मन्नत मांगते हैं। फिर, जब प्राकृतिक चक्र पूरा हो जाता है, तो 'बाल कन्या' को देवदासी के रूप में अर्पित किया जाता है। यह पुत्र प्राप्ति के लिए भी किया जाता है। यदि किसी प्राकृतिक कारण से या बालों की स्वच्छता न होने के कारण किसी लड़की के सिर के बाल आपस में चिपक जाते हैं, जिसे 'जटें बनना' कहते हैं, तो इन क्षेत्रों में प्रचलित अंधविश्वास है कि इसे माता का निमंत्रण माना जाता है।

विवाह, लेकिन किसके साथ: कन्या को देवी यल्लमा के चरणों में समर्पित करते समय किए जाने वाले अनुष्ठान बिलकुल विवाह अनुष्ठानों के समान ही होते हैं। सबसे पहले, कन्या को मंदिर से तीन मील दूर स्थित जोगुला बनी नामक कुएँ के जल से नहलाया जाता है। उसे नग्न अवस्था में नीम के पत्तों की माला पहनाई जाती है। उसे जुलूस के रूप में पैदल मंदिर ले जाया जाता है। मंदिर पहुँचने पर, कन्या को पुनः स्नान कराया

जाता है और मंदिर की परिक्रमा करवाई जाती है। पुजारी पूजा और आरती करता है। फिर वह कन्या का विवाह 'देवी' से कराता है और कन्या को मंगलसूत्र पहनाया जाता है। यह मंगलसूत्र इस बात का प्रतीक है कि कन्या का विवाह देवी से हो चुका है और अब उसे किसी पुरुष से विवाह करने का कोई अधिकार नहीं है।

बड़े होने पर देवदासियों का सामाजिक जीवन अत्यंत कष्टमय हो जाता है। विवाह के अधिकार से वंचित होने के कारण, वे अधिकतम दो वर्ष तक एक पुरुष के साथ रह सकती हैं, इस दौरान उत्पन्न संतान को नाजायज माना जाता है। अधिकांश देवदासियाँ बाद में बड़े शहरों में दलालों के माध्यम से वेश्यावृत्ति करके अपना जीवन यापन करती हैं। कभी-कभी वे भीख माँगकर भी अपना जीवन यापन करती हैं।

अंधविश्वास और अनेक आर्थिक समस्याएँ, गरीबी के गर्भ से उत्पन्न होती हैं। इस बुराई की जड़ भी गरीबी और अंधविश्वास में ही निहित है। गरीबी को दूर करके, लोगों को शिक्षित करके और उन्हें अंधविश्वासों से मुक्त करके ही इस प्रथा खत्म किया जा सकता है।

स्त्रोको हिंदी पत्रिका 'सरिता'

औरतों के खिलाफ सामाजिक बुराइयों को निषेध करने के लिए कानून

भारत में औरतों के प्रति सामाजिक बुराइयाँ एक गम्भीर और गहरी जड़ें जमाए हुए समस्या हैं, जो सदियों से समाज में विभिन्न रूपों में बनी हुई हैं। भले ही शिक्षा, कानून और जागरूकता ने बहुत सुधार किए हैं, लेकिन आज भी कई बुराइयाँ मौजूद हैं। नीचे प्रमुख सामाजिक बुराइयों का विवरण दिया गया है

1. दहेज प्रथा : शादी के समय लड़की के परिवार से दूल्हे के परिवार को नकद, गाड़ी, घर या अन्य वस्तुएँ देने की प्रथा। इस प्रथा के कारण लड़कियों को बोझ समझा जाता है और दहेज हत्या जैसी घटनाएँ होती हैं।

कानून : दहेज निषेध अधिनियम, 1961

2. भ्रूण हत्या और कन्या भ्रूण हत्या : समाज में लड़कों को अधिक महत्व देने के कारण लड़कियों को गर्भ में ही मारा जाता है।

परिणाम : भारत में लिंगानुपात असंतुलन बढ़ता जा रहा है।

कानून: Pre-Conception and Pre-Natal Diagnostic Techniques (PCPNDT) Act, 1994

3. बाल विवाह : कई ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में कम उम्र में लड़कियों की शादी कर दी जाती है। इसके कारण शिक्षा छूट जाती है, स्वास्थ्य समस्याएँ और घरेलू हिंसा का खतरा बढ़ता है।

कानून : बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006

4. घरेलू हिंसा : बहुत सी महिलाएँ पति या परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा शारीरिक, मानसिक या आर्थिक हिंसा का सामना करती हैं।

कानून: Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005

5. लैंगिक भेदभाव : शिक्षा, नौकरी, वेतन और निर्णय लेने के अधिकारों में महिलाओं को पुरुषों से कमतर माना जाता है। इससे महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता और आत्मसम्मान प्रभावित होता है।

6. पर्दा प्रथा और सामाजिक नियंत्रण : कुछ समुदायों में महिलाओं पर पर्दा रखने, घर से बाहर न निकलने या अपनी राय न रखने की रोक-टोक होती है।

यह प्रथा महिलाओं की स्वतंत्रता और समानता के अधिकारों को सीमित करती है।

7. सती प्रथा (अब लगभग समाप्त) : पहले के समय में विधवाओं को पति की चिता के साथ जलाने की अमानवीय प्रथा थी।

कानून: सती निषेध अधिनियम, 1987 ने इसे अपराध घोषित किया।

8. कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न : कई महिलाएँ कार्यस्थलों पर अनुचित व्यवहार या यौन शोषण का सामना करती हैं।

कानून : POSH Act (2013) - Prevention of Sexual Harassment of Women at Workplace Act

9. शिक्षा से वंचित रखना : कई ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों की पढ़ाई को महत्व नहीं दिया जाता। "लड़की तो पराया धन है" जैसी सोच उनके करियर और आत्मनिर्भरता को रोकती है।

10. विधवाओं के प्रति भेदभाव : कुछ समाजों में विधवाओं को अशुभ, अपवित्र या तिरस्कृत माना जाता है। उन्हें रंगीन कपड़े पहनने या सामाजिक आयोजनों में शामिल होने की अनुमति नहीं होती।

स्वास्थ्य

-कैलाश जैन

सावधान ! आज भी दुनिया में मानसिक बीमारियों से जूझ रहे हैं एक अरब से भी अधिक लोग, जरूरी है सामाजिक जागरूकता

अभी कुछ दिन पहले ही दुनिया भर में विश्व मानसिक स्वास्थ्य दिवस मनाया गया। उल्लेखनीय है कि हर साल 10 अक्टूबर को विश्व मानसिक स्वास्थ्य दिवस मनाया जाता है। आज, दुनिया में एक अरब से अधिक लोग किसी न किसी मानसिक बीमारी से पीड़ित हैं। इसके बावजूद, समाज में मानसिक स्वास्थ्य को लेकर भ्रम, कलंक और भेदभाव अभी भी मौजूद हैं। यह न केवल व्यक्ति की मानसिक स्थिति को खराब करता है, बल्कि उसके जीवन की गुणवत्ता और कार्यक्षमता पर भी असर डालता है।

कार्यस्थल और मानसिक स्वास्थ्य

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के अनुसार, दुनिया की 60 फीसदी जनसंख्या कार्यरत है, यानी वे किसी न किसी प्रकार का काम कर रहे हैं। ऐसे में कार्यस्थल का वातावरण मानसिक स्वास्थ्य को बहुत प्रभावित करता है। उत्पीड़न, काम की खराब स्थितियां, लंबे समय तक काम का दबाव और समर्थन की कमी जैसे कारण मानसिक तनाव को बढ़ाते हैं। इससे कर्मचारी की कार्यक्षमता में कमी आती है और कई बार मानसिक बीमारियां जन्म लेती हैं। इसलिए जरूरी है कि सरकारें, नियोक्ता, कर्मचारी संगठनों और मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञों के बीच सहयोग हो ताकि एक ऐसा वातावरण बनाया जा सके जहां कार्यस्थल मानसिक स्वास्थ्य को नुकसान न पहुंचाए, बल्कि उसे सहारा दे।

आत्महत्या : एक गंभीर संकट

हर साल 7,27,000 से अधिक लोग आत्महत्या के कारण अपनी जान गंवाते हैं। हर एक मौत के पीछे एक अधूरी कहानी होती है जैसे दर्द, अकेलापन और असहायता की कहानी। साल 2030 तक आत्महत्याओं में 33 फीसदी की कमी का लक्ष्य रखा गया था, लेकिन अब तक सिर्फ 12 फीसदी प्रगति ही हो पाई है। यह एक गंभीर संकट है जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। समय की मांग है कि हम संवेदनशीलता, दया और निवेश के साथ तुरंत कदम उठाने की जरूरत है।

बुजुर्गों में मानसिक स्वास्थ्य की स्थिति

डब्ल्यूएचओ के अनुसार, 2030 तक हर छह में से एक व्यक्ति की उम्र 60 साल या उससे अधिक होगी। उम्र बढ़ने के साथ व्यक्ति के जीवन में कई बदलाव आते हैं जैसे - स्वास्थ्य में गिरावट, अकेलापन, सामाजिक अलगाव और कभी-कभी अपने ही परिवार या देखभाल करने वालों द्वारा शारीरिक या मानसिक शोषण भी देखा जाता है।

14 फीसदी बुजुर्ग (70 वर्ष से ऊपर) किसी न किसी मानसिक बीमारी से ग्रसित होते हैं।

इस उम्र वर्ग में मानसिक रोग 6.8 फीसदी विकलांगता के वर्षों के लिए जिम्मेदार हैं।

छह में से एक बुजुर्ग को किसी न किसी प्रकार का शोषण सहना पड़ता है।

यह आंकड़े हमें चेतावनी देते हैं कि हमें बुजुर्गों के मानसिक स्वास्थ्य पर भी गंभीरता से ध्यान देना होगा। उन्हें समझना, उनसे संवाद करना और उनके लिए सुरक्षित व सम्मानजनक वातावरण बनाना अत्यंत आवश्यक है।

क्या किया जा सकता है?

मानसिक स्वास्थ्य पर खुलकर बात करें, डर और शर्म को हटाएं। जैसे हम शारीरिक बीमारियों पर बात करते हैं, वैसे ही मानसिक स्वास्थ्य पर भी बात होनी चाहिए।

जिन्हें सहायता की जरूरत है, उन्हें समर्थन दें, चाहे वह परिवार का सदस्य हो, सहकर्मी या पड़ोसी, एक सुनने वाला कान और थोड़ी सहानुभूति किसी की जिंदगी बदल सकती है।कार्यस्थलों पर मानसिक स्वास्थ्य नीतियां बनें, जैसे फिजिकल सेफ्टी के लिए नियम होते हैं, वैसे ही मानसिक सुरक्षा के लिए भी दिशा-निर्देश होने चाहिए। बुजुर्गों के लिए सामाजिक कार्यक्रम और सहायता केंद्र विकसित हों, ताकि वे अकेलेपन और उपेक्षा का शिकार न हों। सरकार और समाज दोनों मिलकर निवेश करें, मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के लिए धन, संसाधन और प्रशिक्षण आवश्यक है। मानसिक स्वास्थ्य कोई विशेषाधिकार नहीं, बल्कि हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। मानसिक स्वास्थ्य को प्राथमिकता देंगे, इस पर खुलकर बात करेंगे और जरूरतमंदों के लिए सहारा बनेंगे।

('डाउन-टू-अर्थ' से साभार)

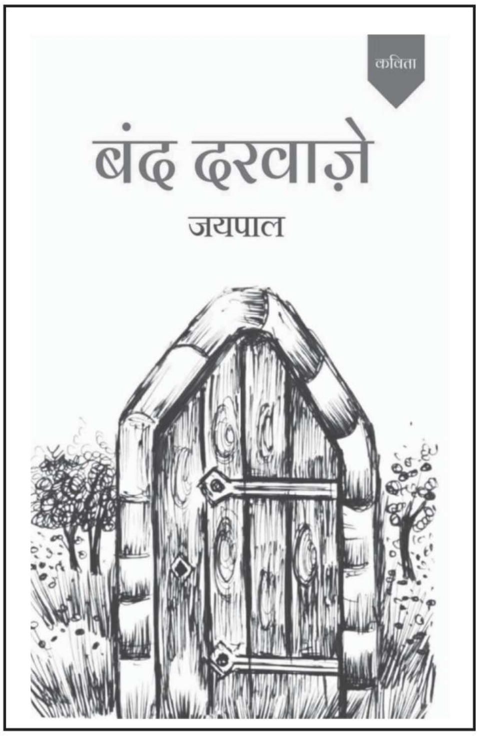
काव्य संग्रह : ''बंद दरवाजे'' समग्र विश्लेषण

–समीक्षक एस.पी.सिंह

कवि जयपाल की कविताएँ केवल साहित्य नहीं, बल्कि भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक यथार्थ का जीवित दस्तावेज़ हैं। उनका काव्य दलित जीवन, सामाजिक भेदभाव, जातिवाद, धर्मसत्ता और सत्ता की पाखंडता का वास्तविक अनुभव प्रस्तुत करता है। ''**बंद दरवाजे**'' नामक यह काव्य संग्रह उस दुनिया की गहन पड़ताल है जहाँ समाज ने जाति, धर्म और वर्ग के नाम पर मानवता को बाँट रखा है। इस समीक्षा में कवि की दृष्टि, भाषा, शैली, विषय, दार्शनिक दृष्टि और सामाजिक प्रासंगिकता का क्रमवार और निरंतर विश्लेषण किया गया है।

जयपाल का दृष्टिकोण अनुभवजन्य है। वह केवल सामाजिक यथार्थ का दर्शक नहीं, बल्कि उसमें जीने वाला कवि है। उसकी कविताएँ तीन स्तरों पर काम करती हैं – सामाजिक, दार्शनिक और मानवीय। सामाजिक दृष्टि से वह जातिवाद, धर्मसत्ता और असमानता की आलोचना करता है। दार्शनिक दृष्टि से वह ईश्वर, मानव और समानता के प्रश्न उठाता है। मानवीय दृष्टि से उसकी कविताएँ जीवन, प्रेम और अस्तित्व का सम्मान करती हैं। इस कारण उसकी कविताएँ प्रचार नहीं, प्रकाश हैं। वह चिल्लाता नहीं, सवाल करता है।

भाषा की दृष्टि से जयपाल की कविताएँ सरल और सहज हैं। वह कठिन शब्दों या अलंकारों का प्रयोग नहीं करता, बल्कि सादगी की गहराई में शक्ति रखता है। इसमें पूरी सभ्यता और सामाजिक यथार्थ की टिप्पणी निहित है। उसकी शैली कथात्मक, संवादात्मक और प्रतीकात्मक है। वह कविता नहीं लिखता, बल्कि कथन को कविता बनाता है।



संग्रह में विभिन्न विषय प्रमुखता से उभरते हैं। ''एक झूठी पत्तल'' और ''पूछताछ'' जैसी कविताएँ जाति और असमानता पर केंद्रित हैं, जहाँ कवि जाति व्यवस्था को मानसिक रोग के रूप में प्रस्तुत करता है। ''पवित्र-अपवित्र'' में धार्मिक और सामाजिक पवित्रता का व्यंग्य है। यहाँ कवि ईश्वर या देवी–देवता पर नहीं, बल्कि उनकी सामाजिक व्याख्या पर प्रहार करता है। ''साफ–सफाई करते हुए'' और ''मैं जीना चाहती हूं'' में स्त्री और दलित चेतना का संगम है, जहाँ दोहरी दासता और पीड़ा स्पष्ट रूप से सामने आती है। ''जग्गु सरपंच'', ''फूलों का टोकरा'' और ''दलितों के घर खाना'' में राजनीतिक सत्ता की पाखंडता और वोट राजनीति पर करारा व्यंग्य है। ''अंतिम सवाल'', ''शूद्र'' और ''ढक्कन'' जैसी कविताओं में सृष्टि, धर्म और मानवता को मानवीय कसौटी पर कसने का प्रयास किया गया है।

दार्शनिक दृष्टि से जयपाल का काव्य आंबेडकर और कबीर की परंपरा का आधुनिक रूप है। कबीर की तरह वह कहता है कि धर्म अगर इंसान को बाँटे तो वह धर्म नहीं। आंबेडकर की तरह वह चेतावनी देता है कि समानता के बिना स्वतंत्रता केवल छल है। उसका दर्शन मानववाद पर आधारित है, जहाँ ईश्वर नहीं, मनुष्य ही केंद्र है। जब वह पूछता है, ''क्या भगवान भी मनुष्य बनना चाहता है कभी?'' तो यह प्रश्न केवल ईश्वर के लिए नहीं, बल्कि उस संपूर्ण व्यवस्था के लिए है जिसने मानवता को भुला दिया। यह एक दार्शनिक क्रांति है, जिसमें धर्म की ऊँचाई मानवता के दृष्टिकोण में खड़ी हो जाती है।

जयपाल का व्यंग्य गहरा और शालीन है। वह किसी व्यक्ति को निशाना नहीं बनाता, बल्कि पूरी

व्यवस्था पर प्रहार करता है। वह हँसी नहीं उड़ाता, बल्कि सवाल उठाता है। कवि धर्म और भेदभाव के संबंध को स्पष्ट करता है।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से जयपाल की कविताएँ लोकभाषा में लिखी गई हैं। ये भाषा साधारण है, पर भावनाओं और विचार की गहराई में अत्यंत प्रभावशाली है। उनकी कविताएँ किसी विशेष वर्ग के लिए नहीं, बल्कि सभी के भीतर मानवता और विवेक के लिए हैं।

जहाँ तक सीमाओं का प्रश्न है, कभी-कभी भाव-आवेश भाषा पर भारी पड़ता है। कुछ कविताएँ अत्यधिक सीधी हो जाती हैं, प्रतीकात्मकता कम दिखाई देती है। दलित पीड़ा का स्वर कुछ जगहों पर पुनरावृत्त प्रतीत होता है। पर ये खामियाँ ईमानदार काव्य की स्वाभाविक थकान हैं, कमजोरी नहीं।

संग्रह का सामाजिक और शिक्षाप्रद महत्व अत्यधिक है। इन्हें स्कूलों और विश्वविद्यालयों में पढ़ाना चाहिए। बच्चों को यह सिखाने के लिए कि भेदभाव नैतिक रूप से खोखला है, और विश्वविद्यालय में दलित साहित्य, समाजशास्त्र और मानवाधिकार अध्ययन के लिए। समाज में यह कविता समझ और संवाद दोनों के लिए आवश्यक है। यह साहित्य केवल पढ़ने के लिए नहीं, बल्कि बदलने के लिए लिखा गया है।

कुल मूल्यांकन में जयपाल की विचार शक्ति अत्यंत सशक्त और तर्कसंगत है। भावनात्मक गहराई प्रामाणिक है। भाषा सरल, व्यंग्यात्मक और प्रभावशाली है। समाज पर उसका प्रभाव विचारोत्तेजक और परिवर्तनकारी है। कविता का उद्देश्य मनुष्य को केंद्र में रखना है और इस कसौटी पर कवि पूरी तरह खरा उतरता है।

पुस्तक-**बंद दरवाजे (कविता-संग्रह)**

कीमत-150/- पेपर-बैक

लेखक- **जयपाल**

प्रकाशक- यूनिक पब्लिशर्स-कुरुक्षेत्र

मेरी राय में प्रेरणा

प्रेरणा वह चीज़ है जिसमें लेखक को अचानक एहसास होता है कि वह क्या कर सकता है। प्रेरणा जितनी प्रबल होगी, उसे पूरा करने के लिए उसे उतनी ही अधिक पीड़ा सहनी होगी।

-लियो टॉल्स्टॉय

महान औरतों को सलूट

भारत की महान औरतें, जिन्होंने अपने साहस, बुद्धिमत्ता, त्याग और कर्म से समाज और देश के इतिहास में अमिट छाप छोड़ी। उन्होंने पुरुष-प्रधान समाज में भी अपनी पहचान बनाई और आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा बनीं। नीचे भारत की कुछ महान औरतों का उल्लेख किया गया है

सरोजिनी नायडू (1879-1949)

भारत की ''नाइटिंगेल ऑफ इंडिया'' (भारत कोकिला) कही जाती हैं। कवयित्री, स्वतंत्रता सेनानी और पहली भारतीय महिला राज्यपाल।महिला अधिकारों और स्वतंत्रता आंदोलन की अग्रणी आवाज़।

सावित्रीबाई फुले (1831-1897)

भारत की पहली महिला शिक्षिका। उन्होंने लड़कियों और दलितों के लिए स्कूल खोले, शिक्षा को महिलाओं का अधिकार बनाने में उनका बड़ा योगदान रहा।

रानी दुर्गावती (1524-1564)

गोंडवाना की शासक, जिन्होंने मुगलों के खिलाफ युद्ध किया।

अपने साहस और नेतृत्व के लिए जानी जाती हैं। उन्होंने आत्मसम्मान के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर दिए।

डॉ. एनी बेसेन्ट (1847-1933)

समाज सुधारक, थियोसोफिकल सोसायटी की नेता और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की समर्थक।

होमरूल लीग की संस्थापक, जिसने भारत की आज़ादी की नींव रखी।

मेरी कोम (जन्म : 1982)

''मैग्निफिसेंट मेरी'' -पाँच बार की विश्व बॉक्सिंग चैंपियन मणिपुर की यह खिलाड़ी संघर्ष और दृढ़ता की मिसाल है।

अरुणा आसफ अली (1909-1996)

1942 के ''भारत छोड़ो आंदोलन'' की नायिका। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाई।

- इन महान औरतों ने यह साबित किया कि महिलाएँ केवल घर की सीमाओं तक नहीं, बल्कि देश, समाज और विश्व के हर क्षेत्र में योगदान दे सकती हैं। ये भारत की शक्ति, साहस और प्रेरणा का प्रतीक हैं।

आओ बच्चों को समझें -डॉ. रूपा राव

''मुझे नियम पता हैं, कृपया उन्हें समझाना शुरू मत कीजिए।''

जब मैंने कौन बनेगा करोड़पति में 10 वर्षीय बच्चे इशित का वायरल वीडियो देखा, तो मैं बिल्कुल भी हैरान नहीं हुई। क्योंकि सच कहूँ तो मैंने ऐसे बहुत से बच्चों को देखा है। इस पीढ़ी के बच्चों के साथ वर्षों तक काम करने के बाद मैं तुरंत समझ गयी कि उस व्यवहार के पीछे असल में क्या चल रहा था।

सोशल मीडिया पर कुछ लोगों ने उसे ''घमंडी'' कहा तो कुछ ने लिखा, ''माता-पिता ने संस्कार नहीं दिए।''

इन सबमें कुछ सच्चाई तो है, लेकिन जो बात सबसे ज़्यादा नज़र आई-वह थी विकासगत असंतुलन (Developmental Imbalance)।

वह जनरेशन अल्फ़ा से है -सबसे तेज़ और अधीर पीढ़ी इशित जनरेशन अल्फ़ा (2010 के बाद जन्मे बच्चे) का प्रतिनिधित्व करता है- जो स्मार्टफोन, टैबलेट और इंस्टेंट रिवॉर्ड्स के साथ बड़े हो रहे हैं। इनके लिए सबकुछ तुरंत होता है- जवाब, गेम, तारीफ़, ध्यान।

लेकिन क्या आप जानते हैं इस गति की कीमत क्या है?

उनके मस्तिष्क का फ्रंटल लोब (Frontal Lobe)- जो निर्णय लेने, धैर्य रखने और भावनाओं को नियंत्रित करने का कार्य करता है वह धीमी गति से विकसित हो रहा है।

यही कारण है कि आज हम एक स्पष्ट पैटर्न देखते हैं- तेज़ सोच, लेकिन कम नियंत्रण।

जब व्यवहार मस्तिष्क के असंतुलन को दर्शाता है

ऐसा व्यवहार कभी-कभी ADHD (Attention Deficit Hyperactivity Disorder) या ODD (Oppositional Defiant Disorder) के शुरुआती संकेत दिखाता है- यह कोई बीमारी नहीं, बल्कि असंतुलित विकसित हो रहे मस्तिष्क के प्रारंभिक संकेत हैं।

ADHD (Impulsive Type) के लक्षण :

- दूसरों की बात बीच में काटना
- बेचैनी और प्रतीक्षा न कर पाना
- अत्यधिक सक्रियता
- तुरंत उत्तर देना

ODD के लक्षण :

- बड़ों या अधिकार रखने वालों से बहस करना
- ज़िद्दीपन और ''मैं हमेशा सही हूँ'' वाला रवैया
- गलती होने पर भी स्वीकार न करना

इन सबका मतलब है भावनात्मक असंतुलन (Emotional Dysregulation) -

जब भावनाएँ मस्तिष्क को नियंत्रित करने लगती हैं, बजाय इसके कि मस्तिष्क भावनाओं को नियंत्रित करे। ऐसे बच्चों में भावना जीतती है, तर्क हार जाता है।

आत्मविश्वास के पीछे छिपा डर उस बच्चे का ''अत्यधिक आत्मविश्वास'' दरअसल प्रदर्शन संबंधी चिंता (Performance Anxiety) भी हो सकता है।

जब कोई बच्चा यह महसूस करता है कि उसे ''बुद्धिमान दिखना'' ही पड़ेगा तो वह अपने डर को छिपाने के लिए आदेशात्मक या प्रभावशाली स्वर में बात करता है। यह एक रक्षा तंत्र (Defense Mechanism) है जहाँ आत्मविश्वास का मुखौटा पहनकर असुरक्षा को छिपाया जाता है।

एक जगह उसने कहा- ''अगर मैं कम से कम ? 12 लाख नहीं जीत पाया, तो मुझे आपके साथ फोटो लेने की अनुमति नहीं होगी।'' यह एक वाक्य ही उसके भीतर की प्रदर्शन चिंता को उजागर करता है। उसका आत्म-मूल्य पहले ही उपलब्धि से जोड़ा जा चुका था। यह दबाव अक्सर माता-पिता या समाज की अपेक्षाओं से उपजता है।

बच्चों को ''स्मार्ट'' नहीं, ''शांत'' बनाना सिखाएँ।

आजकल माता-पिता अपने बच्चे की बुद्धिमत्ता और जीत की प्रशंसा तो करते हैं, पर इस बात पर कम ध्यान देते हैं कि बच्चा अपनी भावनाएँ कैसे व्यक्त करता है। बच्चों को ''तेज़'' बनने से पहले ''धैर्यवान'' बनना सिखाना ज़रूरी है। लेकिन दुख की बात यह है कि बहुत से वयस्कों ने खुद ही

धैर्य खो दिया है तो वे उसे सिखाएँगे कैसे?

बच्चे हमारे शब्दों से नहीं, हमारे व्यवहार से सीखते हैं। यदि वे घर में गुस्सा, अधैर्य या आलोचना देखते हैं, तो वही पैटर्न वे बाहर दोहराते हैं।

आज के बच्चों में मैं क्या देखती हूँ– कक्षा सात का एक बच्चा मुझसे कहता है, ''मुझे सबकुछ पहले से पता है।''

कक्षा आठ की एक लड़की, प्रारंभिक प्रेम संबंधों में उलझकर भावनात्मक रूप से फँस जाती है।

क्या इसका कारण केवल माता-पिता हैं ?

हमेशा नहीं। यहाँ तक कि प्यार और मार्गदर्शन देने वाले घरों में भी कुछ बच्चे विद्रोही बन जाते हैं। खासकर अंतरराष्ट्रीय या प्रतिष्ठित स्कूलों में दो तरह के बच्चे देखने को मिलते हैं–

एक, जो घमंडी, लापरवाह और सहानुभूति-हीन बन जाते हैं दूसरे, जो अकेलेपन, चिंता और अवसाद में डूब जाते हैं क्योंकि वे उस प्रतिस्पर्धा से मेल नहीं खा पाते।

स्कूल, साथियों का वातावरण और गैजेट्स– सबका प्रभाव होता है। कभी-कभी शिक्षा प्रणाली ही उनके सीखने के ढंग से मेल नहीं खाती, और यही असंगति विरोध या विद्रोह के रूप में प्रकट होती है।

हमें अपनी सोच और प्रणाली बदलनी होगी।

मैं पहले भी कई बार लिख चुकी हूँ– हमारी पेरेंटिंग शैली, शिक्षा प्रणाली और सामाजिक अपेक्षाओं को अब बदलने की आवश्यकता है। अगर ऐसा नहीं हुआ तो ऐसा व्यवहार धीरे-धीरे ''सामान्य'' बन जाएगा। फिर जो बच्चा धैर्यवान या विनम्र होगा, उसे ''असामान्य'' समझा जाएगा।

वह बच्चा समस्या नहीं है, वह हमारी पीढ़ी के असंतुलन का लक्षण है।

हम चमकदार, तकनीकी रूप से निपुण, बोलने में तेज़ बच्चे तो बना रहे हैं पर भावनात्मक रूप से अस्थिर बच्चे भी।

उन्हें आलोचना नहीं, समझ, भावनात्मक प्रशिक्षण और सजग उदाहरणों की आवश्यकता है। क्योंकि हर ''ओवर-स्मार्ट'' बच्चे के पीछ एक उज्ज्वल लेकिन बेचैन मन होता है –जिसे दबाने की नहीं, दिशा देने की ज़रूरत है। जिन वयस्कों ने उस बच्चे की सोशल मीडिया पर आलोचना की, वही लोग अक्सर खुद सोशल मीडिया पर गुस्सा, असम्मान दिखाते हैं और अपशब्द बोलते हैं– खासतौर पर ऊँचे पदों पर बैठे लोगों के प्रति। यही सबसे बड़ी विडंबना है।

फायदेमंद है ब्लैक कॉफी

नए शोधों से सामने आया है कि ब्लैक कॉफी व्यक्ति के स्नपयुतंत्र को दुरुस्त रखती है व आत्महत्या की आशंका को कम करती है। साथ ही यह आपको कामयाब एथलीट बनाने में मदद करती है तथा मधुमेह, कई किस्म के कैंसर, पित्ताशय की पथरी, जिगर संबंधी रोगो से बचाती है। अध्ययनकर्ताओं के अनुसार 150 मि.ली. कॉफी में 60 मिली. ग्रा. कैफीन की मात्रा होती है। यदि प्रतिदिन 300 मि.गां. कैफीन का सेवन किया जाए तो यह सेहत को नुक्सान नहीं पहुंचाती जिसका मतलब यह है कि आप दिनभर में पाच कप कॉफी आराम से सेवन कर श्सकते हैं लेकिन अगर इससे ज्यादा कॉफी का सेवन जाए तो यह पेट की खसरीबी, हृदय कीजलन व अनिद्रा का करण बन सकती है।

जेनेटिक कैंसर के खतरे से अंजान हैं 80 फीसदी लोग

एक शोध में कहा गया है कि दस में से आठ लोग, जिन्हें आनुवांशिक कारणों से कैंसर हो सकता है, इसके खतरे से अंजान रहते हैं। बीआरसीए जीन में हुई गड़बड़ी से व्यक्ति को कैंसर हो सकता है। लोगों को अक्सर तब पता चलता है कि उनमें बीआरसी-1 और बीआरसीए-2 जीन हैं, जब उन्हें या किसी परिजन को कैंसर हो जाता है।

अमेरिका की येल यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर माइकल मुरे ने कहा, 'किसी दुर्घटना के बाद ही लोग अपनी जांच कराने आते हैं। परिवार में पहले किसी को कैंसर हो चुका हो, तब भी लोग अपनी जांच कराने में कोताही बरतते हैं। हमें उम्मीद है कि डी.एन.ए. आधरित स्क्रीनिंग की मदद से हम लोगों को कैंसर होने से पहले ही नियमित जांच कराने के लिए प्रेरित कर पाएंगे।'

कैंसर के प्रति लोगों की लापरवाही का पता लगाने के लिए इस शोध में शामिल प्रतिभागियों की औसत आयु 60 थी। इनमें से 267 में बीआरसीए से संबंधित कैंसर का खतरा पाया गया। केवल 18 फीसदी लोग ही शोध से पहले भी इस खतरे से वाकिफ थे। बीआरसीए पॉजिटिव मरीजों में 16.8 फीसदी को कैंसर भी था। शोधकर्ताओं का कहना है कि लोग यदि थोड़ा जागरूक होकर अपनी नियमित जांच कराएं तो कैंसर को बहुत हद तक नियंत्रित किया जा सकेगा। **-प्रेट्र**

पिता जी नहीं जानते थे कि मैं नास्तिक हूँ

–जगदीश्वर चतुर्वेदी

भारत की मुश्किल यह है कि यहाँ जरा सा भी वामपंथी विचारों के क़रीब हो तो परिचित लोग तुरंत फ़तवा जारी कर देते हैं कि वह तो नास्तिक है। हक़ीक़त यह है मैं नास्तिक-आस्तिक की केटेगरी में विश्वास ही नहीं रखता। मैं नागरिक की केटेगरी को मानता हूँ और उसमें ही रस लेता हूँ। नास्तिक-आस्तिक की केटेगरी उस ज़माने में जन्मी थी, जब लोगों के पास आदमी को वर्गीकृत करने के लिए कम से कम शब्द थे।

एक मर्तबा पिताजी श्री लड्डूगोपाल शास्त्री और मैं छत पर लेटे हुए थे, रात के क़रीब 11बज रहे थे, हम दोनों आकाश निहार रहे थे। पिता बता रहे थे कि देखो आकाश में यह फ़लाँ नक्षत्र है, वह फ़लाँ नक्षत्र है।उसमें ही वे बोले कि नक्षत्र की कभी क्षति नहीं होती।वह हमेशा जैसा है वैसा ही रहता है। इस मसले पर हम दोनों में बहस शुरु हो गई।

आम तौर पर शास्त्र के किसी न किसी प्रसंग पर रात को जब छत पर सोने जाते तब ही चर्चा होती थी। क्योंकि दिन में पिताजी मंदिर और अन्य कामों में व्यस्त रहते थे। मैं छत पर हमेशा उनके साथ सोता था। रात का वह समय मेरे लिए सबसे क़ीमती समय होता था। नक्षत्रों पर जब बहस शुरु हुई तो फिर वह अचानक आचार-व्यवहार-संस्कार-रीति-रिवाजों की ओर मुड़ गई। संयोग की बात थी कि बहस के दौरान पिताजी अचानक निरुत्तर हो गए और उन्होंने हार मानने की बजाय मेरे गाल पर बहुत ज़ोर से चांटा मार दिया और उस चांटे की आवाज़ रात के सन्नाटे में आसपास की छतों पर सोए सभी लोगों ने सुनी और अचानक सभी छतों से लोग उठ-उठकर देखने लगे। मैं पिटा, लेकिन मैंने अपना स्टैंड नहीं बदला। पिता अंत में सो गए। आमतौर पर पिता से जब भी शास्त्र पर बहस होती तो अनेक बार उनसे सहमत होता। कभी कभी असहमत होता। असहमति पर डांट पड़ना या चाँटा पड़ना आम बात थी। मैंने उनसे कहा कि यही है वैचारिक असहिष्णुता इसने ब्राह्मणों को असहिष्णु बनाया है। इस बात को महसूस करने में उनको कई वर्ष लगे।इसके बावजूद संवाद-वाद-विवाद बंद नहीं हुआ। क्योंकि मेरे पिता पंडित थे, पुराने शास्त्रों के विलक्षण विद्वान थे। आए दिन नई नई व्याख्याएँ करते। उनके अंदर वक्तृता की विलक्षण क्षमता थी। वे मंदिर पर बैठते थे और वहाँ पर बैठे बैठे घंटों आम लोगों को शास्त्र ज्ञान कराते रहते। शास्त्र ज्ञान कराने की यह शैली टिपिकल भक्ति आंदोलन की शैली है। परंपरागत पंडित आम लोगों को नि:स्वार्थ ज्ञान नहीं देता। सिर्फ भक्ति आंदोलन ने यह परंपरा विकसित की।रामानुजाचार्य ने यह परंपरा विकसित की थी।पिताजी को रामानुजाचार्य के बारे में अनेक चीजें मालूम थीं। मैं बार बार हंसकर कहता था कि आपका पतन हो गया है फ्री में ज्ञान बाँटते हैं!! यह तो तथाकथित वैदिक परंपरा का निषेध है! पिताजी के पास तंत्र, वेद और शक्ति परंपरा का विशाल ज्ञान भंडार था। वे उस क्षेत्र के इन्साइक्लोपीडिया थे।

आरंभ में जब आधुनिक विषयों की किताबें मथुरा में लाइब्रेरी से लाकर पढ़ा करता था तब वे मेरे ऊपर आए दिन नाराज़ होते और कहते ये किताबें बिगाड़ देंगी। मैं कहता कि कभी पढ़कर तो देखो, वे उन किताबों को पढ़ते नहीं थे, उलटे कभी कभी गुस्से में उन किताबों को मेरे हाथ से छीनकर फेंक देते या फाड़ देते। मेरी माँ इस सबसे बड़ी दुखी होती वह हमेशा मेरा पक्ष लेती और पिता से झगड़ा करती कि पढ़ने दो तुम्हारा क्या नुक़सान हो रहा है, वे कहते बिगड़ जाएगा। माँ इस बात को मानने को तैयार नहीं थी।

पिता के जीवन में ज्ञान के रुप में पैराडाइम शिफ़्ट तब हुआ जब मैं अपनी जे.एन.यू. से पढ़ाई ख़त्म करके 1986 में मथुरा लौटा, मेरे पास सैकड़ों किताबें थीं। अचानक मेरा घर आधुनिक किताबों से भर गया। पहली बार पिता ने उन किताबों को देखकर कोई आपत्ति प्रकट नहीं की। मैं पन्द्रह दिन मथुरा में रहकर पुन: नौकरी की तलाश में दिल्ली चला गया। इस दौरान मेरी किताबें सन् 1986 से 1990 तक मथुरा में रहीं।उनमें से अनेक किताबों को पिता ने पढ़ा और वे बेहद खुश हुए और पहली बार कहा कि बहुत ही शानदार किताबें हैं। इस क्रम में उन्होंने कार्ल मार्क्स की किताबें सबसे पहले पढ़ीं। मार्क्स उनकी समझ में कितने आए यह मैं नहीं जानता लेकिन एक परिवर्तन ज़रूर हुआ कि वे कार्ल मार्क्स के प्रशंसक हो गए।

एक बार कोई विदेशी स्कॉलर व्यक्ति मेरे घर आया, पिता उसे घर में अंदर ले गए, आधुनिक विषयों की किताबें दिखाईं, उनमें मार्क्स की किताबों को एक पण्डित के घर में देखकर वह दंग रह गया। उसने पूछा इन किताबों को कौन पढ़ता है ? पिताजी ने कहा मेरा बेटा पढ़ता है, ये उसकी किताबें हैं। फिर उसने मार्क्स के लिखे पर उनसे बातें कीं तो पिता ने अपने अनुसार उसे मार्क्स के बारे में बताया, वह व्यक्ति बहुत खुश होकर गया। मैं बीच बीच में दिल्ली से मथुरा आता रहता। एक दिन उन्होंने कहा कि तुम्हारी किताबों ने तो मेरी एक विदेशी की नज़र में इज़्ज़त ही बढ़ा दी। वह मेरी पंडिताई से उतना खुश नहीं हुआ जितना तुम्हारी किताबों को देखकर खुश हुआ।

मार्क्स की अधिकांश किताबें मेरे पास थीं। उनमें प्रेमचंद, राहुल सांकृत्यायन, देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय, जॉर्ज लुकाच, प्लेखानोव, यशपाल आदि की सभी किताबें थीं। तकरीबन डेढ़ हज़ार किताबें मेरे संकलन में थीं जिनको मैं जे.एन.यू. से लेकर लौटा था।

*****

पहल

–कुलजीत डँगर खेड़ा

प्रकृति की गोद में बसा झालारां गाँव का स्कूल मेरी यादों में बसा है। गाँव के बाहरी इलाके में घने पेड़ों से घिरा एक छोटे से भवन वाला स्कूल। स्कूल के प्रांगण में बगीचे की खुशबू बिखेरते फूल हर आने वालू का स्वागत करते नज़र आते थे। लगभग ढाई दशक पहले जब मेरा तबादला इस स्कूल में हुआ, तो मेरे मन में गाँव के नाम को लेकर सवाल उठने लगे। मैं अक्सर गाँव का नाम झालारण कैसे पड़ा, इस बारे में सोचता रहता था। जब मैंने गाँव के एक–दो युवकों से इस बारे में जानने की कोशिश की, तो मुझे कोई संतोषजनक जवाब नहीं मिला। कुछ दिनों बाद, एक बुजुर्ग आदमी अपने पोते का स्कूल में दाखिला कराने के लिए आया। बच्चे का नाम दर्ज करने के बाद, मैंने उस बुजुर्ग आदमी से अपने सवाल का जवाब जानना चाहा। उस आदमी के झुर्रियों भरे चेहरे पर मुस्कान फैल गई।

वह मुझसे कहने लगा, ''बेटा, हमारा यह गाँव नहर के बिल्कुल आखिर पर है। चूँकि इसकी ज़मीन नहर के पानी से ऊँची थी, इसलिए हमारे खेतों को नहर का पानी नहीं मिलता था।'' इस समस्या के समाधान के लिए हमारे बुजुर्गों ने बैलों द्वारा खींची जाने वाली झलारें लगाईं, जिन्हें आप झट्टा कहते हैं। उन्होंने अपनी मेहनत से बंजर ज़मीन को उपजाऊ बनाया। हमारे बाप–दादों की मेहनत रंग लाई। आज हम उनकी मेहनत के कारण खुखहाली भरा जीवन जी रहें हैं।

बुजुर्ग ने मेरी शंकाओं का निवारण किया और घर चले गए। उनके दृढ़ कदमों को देखकर मैं सोच रहा था कि अगर मन में दृढ़ निश्चय हो, तो कुछ भी किया जा सकता है।

स्कूल में अभी कुछ ही दिन बीते थे कि एक दिन आधी छुट्टी के समय चार–पाँच बच्चे दौड़ते हुए मेरे पास आए। उन्होंने कहा, ''मास्टर जी, रमन और अशोक झलारों में फसे नारियलों को छेड़ रहे हैं।'' मुझे बच्चों की बात समझ नहीं आई। मेरे बगल में खड़े विज्ञान शिक्षक ने मामला समझाया। ''मास्टर जी, इस इलाके के लोग अज्ञानतावश पूजा की चीज़ें अपने भले की झूठी उम्मीद से नहर में फेंक देते हैं।'' गाँव नहर के अंत पर होने के कारण, फेंका हुआ सामान यहाँ आकर झलारों में फँस जाता है। हमारे स्कूल के ये बच्चे, रमन और अशोक, बहुत शरारती हैं। उनकी पहले भी ऐसी शिकायत मिली थी। आधी छुट्टी खत्म होने की घंटी बजी। मेरे कक्षा में जाने से पहले ही, उन दोनों को मेरे पास आई शिकायत के बारे में पता चल गया था। वे कक्षा के कोने में डरे हुए बैठे थे। मैंने प्यार से दोनों को अपने पास बुलाया। मैंने कहा, तुम्हें डरने की ज़रूरत नहीं है। आज की शिकायत के लिए तुम्हें कोई सज़ा नहीं मिलेगी। बस जो भी पूछा जाए उसका सही जवाब देना।

बताओ, क्या तुम्हें जादू–टोने वाले नारियल से डर नहीं लगता? रमन कहने लगा, हाँ जी, डर तो लगता है, पर मुझे नारियल खाने का बहुत मन करता है। एक बार शहर जाते समय, मेरी माँ ने बस में नारियल की गिरी बेचने वाले से नारियल का एक टुकड़ा मेरे लिए लिया था। मुझे वह बहुत पसंद आया। उस दिन के बाद, मुझे वह फिर कभी खाने को नहीं मिला। झलारों में आए नारियलों को छेड़कर मन रोमांच से

भर जाता है। रमन का नारियल खाने का अधूरा अनुभव मन को कचोटने लगा।

मैंने कक्षा के बच्चों से कहा कि आज मैं तुम्हें नारियल के जादू-टोने की असलियत बताऊँगा।अब झालरों से नारियल कौन ला सकता है? रमन और अशोक समेत पाँच-छह बच्चे उठ खड़े हुए। मेरे कहने पर वे दौड़ते हुए नारियल लेने चले गए। उनके आने तक मैंने नारियल छीलने के लिए एक पेचकस और एक चाकू मँगवाकर रख लिया। वे जल्दी ही तीन-चार नारियल लेकर लौट आए। सभी बच्चे उत्सुकता से मेरी ओर देखने लगे। मैंने नारियल मेज पर रखे और छीलने लगा। साथ ही, उन धूर्त लोगों के बारे में भी बताना शुरू किया जो जादू-टोने के नाम पर भोले-भाले लोगों को गुमराह करके लूटते हैं।

जादू-टोने से कभी नहीं डरना चाहिए। हमारी दुकानों में जादू-टोने का सामान पड़ा रहता है। क्या आपने कभी दुकानदारों को जादू-टोने से नुकसान होते देखा या सुना है? सभी बच्चों ने एक स्वर में ''नहीं'' में उत्तर दिया। दरअसल, दुकानदार जादू-टोने का सामान बेचकर पैसा कमाते हैं। अपनी कहानी जारी रखते हुए, मैंने कहा, हाँ, जब कोई जादू-टोना करने वाला व्यक्ति बहते पानी, नहर या नदी में जादू-टोने का सामान फेंकता है, तो इससे प्रदूषण होता है। उस सामान में संधूर जैसे ज़हरीले पदार्थ भी होते हैं।

मैं समझा ही रहा था कि एक बच्चा बोल पड़ा, ''सर, आपका मतलब है कि हमको जादू-टोने का सामान खा लेना चाहिए।'' मैंने बच्चों की शंकाएँ दूर करते हुए उन्हें समझाया, ''प्यारे बच्चों, जादू-टोने में भी संधूर जैसे ज़हरीले पदार्थ होते हैं। इसलिए जादू-टोने के सामान में मिलने वाली मिठाइयाँ, गुड़, भुजिया आदि कभी नहीं खानी चाहिए। हाँ, नारियल जैसी बंद चीज़ें पूरी तरह जाँच के बाद कि कोई उसमे जहर आदि तो नहीं मिला हुआ उसके उपरांत ही खाई जा सकती हैं। जैसे आज हम सब मिलकर खाएँगे क्योंकि मैने इसकी पुरी जाँच कर ली है।'' नारियल में पाए जाने वाली कंघी, शीशा, तेल आदि जैसी आम तौर पर इस्तेमाल होने वाली चीज़ें इस्तेमाल की जा सकती हैं। बच्चे मुझसे नारियल के बारे में सवाल पूछते रहे। मेरे जवाबों से उनकी शंकाएँ दूर हो गईं। बातचीत के साथ-साथ, मैंने नारियल से गिरियाँ निकालीं और उन्हें कक्षा में बैठे बच्चों की संख्या के बराबर टुकड़ों में काटा। सबसे पहले, मैंने एक टुकड़ा लिया और उसे खाया। जब मैंने नारियल खाने की चाहत रखने वाले बच्चों से हाथ उठाने को कहा, तो पूरी कक्षा के हाथ उठ गए। मैंने सबको नारियल का एक-एक टुकड़ा बाँटा। सबने उसे खाया।

इस घटना के बाद, स्कूल के बच्चे झलारों में आए नारियलों को कभी नहीं छोड़ते थे। वे झलारों में फंसे नारियलों को निकालकर आपस में बाँटकर खाते थे। रमन और अशोक की इस पहल ने बच्चों के मन में नारियल के प्रति जादू-टोने का जो डर था हमेशा के लिए खत्म कर दिया।

शर्त

कनाडा में एक घर की गर्मी चली गई! हाइड्रो के तकनीशियन को बुलाया। वह गोरा था.. उसने जाँच की और कहा। ''थर्मो-स्टेट खराब है, इसे बदलो''! पूछा कितना?.. उसने कहा 50 डॉलर! उसने बटुए की तरफ देखा... पैसे नहीं थे! उसने बटुए को देखा और हँसने लगा और बोला ''मुझे पैसे नहीं चाहिए.. यह अपने आप आपके अगले बिल में जुड़ जाएँगे!'' जब उसने काम खत्म किया, तो वह जाने लगा और पूछा। ''आपकी सर्विस कॉल का कितना खर्च आएगा?''.. उसने कहा ''पैसे नहीं... यह सर्विस हाइड्रो द्वारा मुफ़्त दी जाती है!'' मैंने कहा, ''मुझे आपका काम बहुत पसंद आया.. मैं सर्विस के लिए आपके निजी फ़ोन पर कॉल करके आ सकता हूँ.. क्या मैं सीधे आपको भुगतान कर सकता हूँ?'' उसने कहा.. ''मैं नहीं आ सकता क्योंकि यह हितों का टकराव (Conflict of interest) होगा''! उन्होंने कहा, ''मेरी अंतरात्मा मुझे इस बात की इजाजत नहीं देती कि मैं वही काम करूं जिसके लिए मेरा विभाग मुझे पैसे देता है, और किसी और के घर से पैसे लूं।'' मैं चुप रहा, लेकिन जाते-जाते मैंने माफ़ी मांगी. और उनसे एक और बात पूछी... उन्होंने कहा, ''दोस्त, तुम इतने ईमानदार विचारक हो... तुम्हें भगवान पर यकीन होना चाहिए?'' फिर उन्होंने कहा, ''नहीं, मैं नास्तिक हूं... मैं अपने जीवन में कभी चर्च नहीं गया।'' अच्छा इंसान बनने के लिए धार्मिक होना ज़रूरी नहीं है, लेकिन धार्मिक होने के लिए अच्छा इंसान होना पहली शर्त है।

गायक ज़ुबिन गर्ग जो अपने लोगों के साथ खड़े रहे



ज़ुबिन गर्ग कौन थे?

अख़बारों की सुर्खियों पर गौर करने वाले कहेंगे कि 'असम के एक गायक थे, जिनका सिंगापुर में निधन हो गया।'

थोड़ा ज्यादा जानकार कहेंगे, 'वे असम के एक बेहद लोकप्रिय गायक थे, जिन्होंने 40 हज़ार गाने गाए, कुछ हिंदी फ़िल्मों में तो हिट गाने भी गाए, उनके निधन पर लाखों लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी।'

लेकिन ये लोगों का हिस्सा उनके व्यक्तित्व का एक छोटा सा अंश ही बयां करता है। अगर वे सिर्फ़ एक गायक होते, तो हम देश के दूसरे छोर पर बैठे, इस हिंदी पत्रिका में उनके बारे में बात ही नहीं करते।

* वे एक ऐसे व्यक्ति थे जो हर ग़लत चीज़ के ख़िलाफ़ डटकर खड़े रहते थे। जहाँ मुंबई की सेलिब्रिटी हस्तियाँ बहिष्कार के डर से गलत को गलत कहने को लेकर चुप हो जाती हैं, वहीं मौत की धमकियाँ भी ज़ुबिन को चुप नहीं करा पातीं।

'वे कहते थे कि मेरा कोई धर्म नहीं, मेरी कोई जाति नहीं, मेरा कोई ईश्वर नहीं, मैं नास्तिक हूँ, मैं समाजवादी हूँ।'

* उनके नाम में गर्ग शब्द पंजाबी पाठकों को यह भ्रम दे सकता है कि यह उनकी जाति का संकेत देता है (क्योंकि 'गर्ग' पंजाब में बनिया समुदाय की एक जनजाति है), लेकिन यह उनके नाम का ही एक हिस्सा है। ब्राह्मण परिवार में जन्मे ज़ुबिन ने बारहवीं कक्षा में पढ़ते समय ही अपनी जनेऊ उतारकर खुद को कथित धर्म और जाति से मुक्त घोषित कर दिया था।

'जब मोदी सरकार नागरिकता संशोधन अधिनियम (सीएए) लेकर आई, तो असम में इसका कड़ा विरोध हुआ, ज़ुबिन इन विपक्षी मोर्चों में सबसे आगे खड़े हुए और लड़े।' उन्हें असमिया भाषा और संस्कृति से बेहद लगाव था, लेकिन वे इसे लेकर संकीर्णता के शिकार नहीं थे। 2013 में, असम के उग्रवादी संगठन 'उलवा' ने आदेश जारी किया था कि असम के बिहू उत्सव में कोई भी हिंदी गीत नहीं गाएगा। ज़ुबिन ने एक हिंदी गीत गाते हुए कहा था कि संगीत की कोई भाषा नहीं होती। उल्वा ने उन्हें जान से मारने की धमकी दी थी। लेकिन डर उनके स्वभाव में नहीं था। आज वही उल्फा उन्हें श्रद्धांजलि दे रहा है।

आरामदायक और विलासितापूर्ण जीवन जीने के आदी, सेलिब्रिटी विवादों से बचते हैं और मीठी-मीठी बातें करते हैं। वे सत्ता में बैठे लोगों की चापलूसी करते हैं। लेकिन ज़ुबिन कैमरों के सामने और उनके मुँह पर खुलेआम कहते थे कि सभी मंत्री, चाहे वे भाजपा के हों या कांग्रेस के, भ्रष्ट हैं। जब एक टीवी एंकर ने उनसे पूछा इतना कड़वाहट भरा व्यवहार क्यों?, तो उन्होंने कहा, 'मैं कोई राजनेता नहीं, एक योद्धा हूँ।'

'हर दिन सैकड़ों गरीब लोग मदद के लिए उनके पास आते थे और वह बिना किसी पब्लिसिटी के अपनी कमाई का एक बड़ा हिस्सा उन्हें बाँट देते थे।'

'वह मुंबई गए। वहाँ भी उन्होंने कम समय में ही बड़ा नाम प्राप्त किया। लेकिन वहाँ के संगीत और फ़िल्म जगत का रंग-ढंग उनके लिए बर्दाश्त करना मुश्किल था। वे मुंबई छोड़कर अपने लोगों के पास लौट आए।

चे ग्वेरा से प्रभावित इस गायक की मृत्यु को लेकर कई संदेह हैं, जिनकी जाँच एक विशेष जाँच दल द्वारा की जा रही है। हम तर्कशील सोसाइटी की ओर से उनके विचारों, अपने लोगों के लिए लड़ने के उनके जुनून और उनकी कला को सलाम करते हैं।



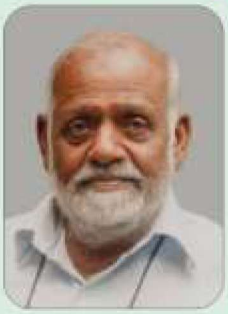
मनुष्य और श्रम

मेरे लिए, मनुष्य के बाहर विचारों का कोई अस्तित्व नहीं है। मेरे लिए, मनुष्य और केवल मनुष्य ही सभी वस्तुओं और विचारों का रचयिता है। वही सभी 'चमत्कार' करता है और प्रकृति की सभी शक्तियों का 'स्वामी' है। हमारी दुनिया में जो कुछ भी सबसे सुंदर है, वह मानव श्रम और उसके कुशल हाथों द्वारा निर्मित है, और हमारे विचार और संकल्पनाएँ श्रम की प्रक्रिया से ही उत्पन्न होते हैं।

यदि किसी 'पवित्र' चीज़ की चर्चा आवश्यक है, तो मैं कहूँगा कि वह है मनुष्य का स्वयं से असंतोष, बेहतर बनने की उसकी इच्छा। मैं जीवन की समस्त गंदगी के प्रति उसकी घृणा को भी पवित्र मानता हूँ, जिसे उसने स्वयं उत्पन्न किया है। मैं दुनिया के लोगों के बीच ईर्ष्या, लोभ, अपराध, बीमारी, युद्ध और शत्रुता को समाप्त करने की उसकी इच्छा और उसके श्रम को पवित्र मानता हूँ।

-मैक्सिम गोर्की

एक सच्चाई (ब्लाइंड स्पॉट)



मानव आँख की संरचना ऐसी होती है कि उसके दृष्टि क्षेत्र में एक बिंदु होता है जहाँ से वह कुछ भी नहीं देख सकता, डॉक्टर इसे ब्लाइंड स्पॉट कहते हैं। हमें इस दोष का पता नहीं चलता क्योंकि हमारा मस्तिष्क उस बिंदु को आसपास की जानकारी से भर देता है। मेरा मानना है कि बौद्धिक जीवन में अधिकांश लोगों के लिए, यह ब्लाइंड स्पॉट ही उनका अपना धर्म है। यहाँ तक कि अच्छे, बुद्धिमान, समझदार लोग जो प्रत्येक घटना को तार्किक रूप से समझने की क्षमता रखते हैं, अपने धर्म की अतार्किकता को समझने में असमर्थ होते हैं।

-डा. सुभाष परहार

संदेश और अहद

'तर्कशील पथ' पत्रिका वैज्ञानिक चेतना का प्रकटीकरण है। ज्ञान, विज्ञान, स्वास्थ्य, मनोविज्ञान और सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों का गंभीरता से विश्लेषण करने वाली इस पत्रिका के और भी अधिक पाठकों तक पहुँचने की संभावनाएँ हैं। 'तर्कशील पथ' का प्रत्येक पाठक अन्य पाठकों तक यह पत्रिका पहुँचाने की कोशिश करे । वैज्ञानिक चेतना और तर्कशील जीवन के प्रसार के लिए यह अभ्यास आवश्यक है। यही संदेश और अहद है।

If undelivered please return to :

Tarksheel

**Tarksheel Bhawan, Tarksheel Chowk,
Sanghera By Pass, BARNALA-148101
Post Box No. 55**

Cell. 98769 53561, 98728 74620
Web : www.tarksheel.org
e-mail : tarkshiloffice@gmail.com

BOOK POST
(Printed Matter)

To ....

....

....